सुन्दर साहित्य-माला

सम्पादक

आचार्य रामलोचनशरण

['बालक'-सम्पादक]

सुन्दर साहित्य-माला

को

कुछ उत्तमोत्तम नई पुस्तकें

देवता [श्रीराधाकृष्ण प्रसाद] ... ॥=)

कानन [आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री] १॥)

*हुंकार [श्री 'दिनकर'] ... ॥।)

*लालतारा [श्री 'बेनीपुरी'] ... ॥।)

पंचामृत [श्री शुकदेव ठाकुर] ... ॥)

भारतीय दर्शन-परिचय [प्रो० श्री हरिमोहन झा, एम. ए. ५)

हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास [श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'] ५)

महाकवि विद्यापति [स्व० शिवनंदन ठाकुर, एम. ए.] ४)

गुप्तजी के काव्य की कारुण्यधारा [प्रो० श्री धर्मेन्दु ब्रह्मचारी, एम. ए. त्रितय) २॥)

अन्तर की बात [श्री राधाकृष्ण प्रसाद] ... १।)

गुप्तजी और उनकी यशोधरा [श्री केसरी कुमार, रघुवंश सुमन, बी. ए. आनर्स गोल्ड मेडलिस्ट] १।)

* चिह्नित पुस्तकों का नया संस्करण होने जा रहा है।]

कवि श्रीकेसरी

मराली

केसरी

प्रकाशक

पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय (बिहार-प्रान्त)

प्रथम संस्करण—कार्तिक-पूर्णिमा १९९९, नवम्बर १९४२

मूल्य ३)

मुद्रक—ना० रा० सोमण, विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय

बाबू शिवकमल सिंह

(कवि के पूज्य चाचा)

समर्पण

मेरे वंदनीय चाचा,

आपने मुझे जीवन का मर्म दिया है। अतएव यह मेरा कवि-कर्म आपके ही श्रीचरणों मे निवेदित है।

अपनी सबसे प्यारी चीज आपको छोड़ और किसे समर्पित करूँ?

श्रद्धानत

केसरी
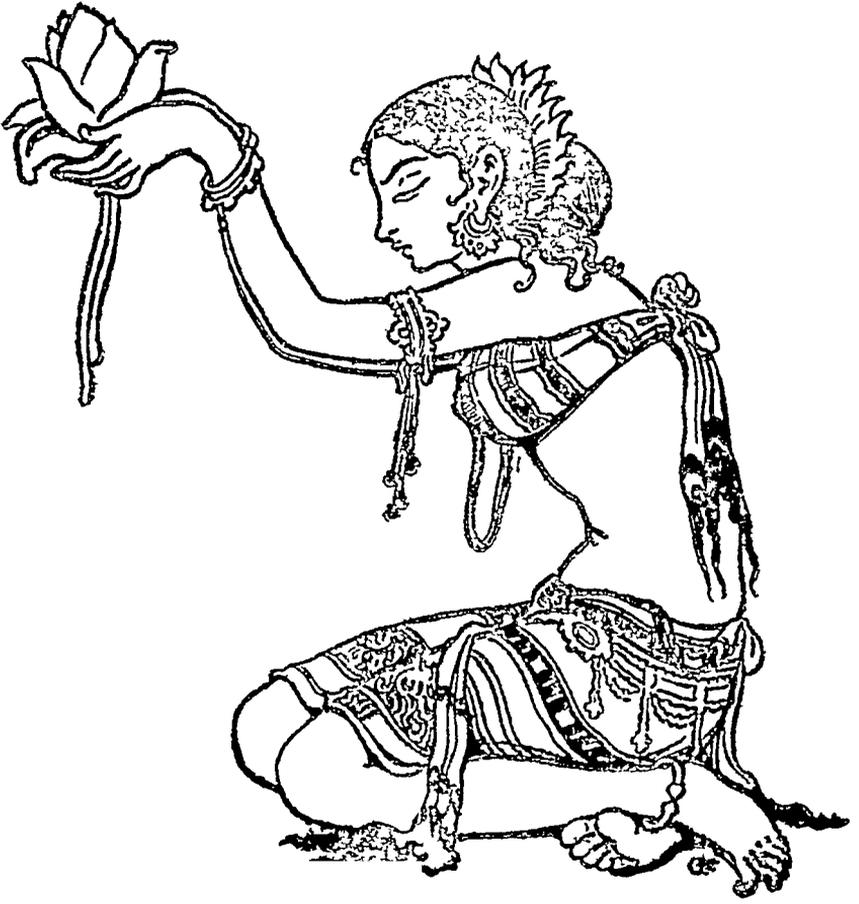
दो शब्द

अपनी प्रथम पुस्तक से लेखक का एक गहरा मोह होता है। और, यह मेरी पहली पुस्तक है। प्रस्तुत संग्रह चयनात्मक है, संकलनात्मक नही। इसमें गत दस बरसों में लिखी मेरी कुछ चुनी हुई कविताओं का समावेश हुआ है। फिर भी दो-चार ऐसी हैं जो केवल लेखक के पक्षपात के बल पर ही यहाँ स्थान पा सकी हैं।

प्रायः सभी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है। पुस्तक में प्रवेश के पहले कुछ पंक्तियो में आवश्यक परिवर्त्तन-परिष्कार होना उचित था। व्याकरण के अखंड अनुशासन से कविता की स्वच्छन्द आत्मा संकुचित हो जाती है। मुझे शब्दो मे कुछ ऐसे परिवर्त्तन करने पड़े हैं जिन्हें मैं विकृति-विपर्य्यय ही कहूँगा।

इन कविताओं के बारे में मुझे कोई सफाई नही देनी है। अतएव मैं किसी भूमिका या आमुख की

आवश्यकता नहीं समझता। वस्तुतः कविता की कोई सफाई होती ही नही ; वह स्वतः-सिद्ध वस्तु है—'प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः'। इसका एक कारण और है। मेरी कविताएँ किसी 'वाद'-विशेष को लेकर नही चली हैं। इसीलिये इनमे किसी प्रवाद की गुंजायश नहीं। मैने अपने कवि-जीवन के आरम्भ में ही अँगरेज कवि कीट्स की इस वाणी को हृदयंगम किया था—

> *"The only means of strengthening one's intellect is to make up one's mind about nothing—to let the mind be a thoroughfare for all thoughts, not a select party".*

कवि का मानस-मंदिर सभी प्रकार की विचार-रश्मियों के लिये खुला रहना चाहिये। तभी सौन्दर्य्य का अन्तर्देवता परिपुष्ट और परिष्कृत होता है। सौन्दर्य्य के माध्यम द्वारा ही कलाविद् विश्व-तत्त्व का अध्ययन करता है, उसे ग्रहण करता है। इसीलिये उसकी कला—

सुंदरता कहँ सुंदर करई, छबि-गृह दीप-सिखा जनु बरई

यह सौन्दर्य्य-ग्राहिणी चित्तवृत्ति—जिसे हम रोमांटिक दृष्टिकोण भी कह सकते हैं—वह गोमुखी है जिससे कविता की गंगा फूटती है। सभी देशों की काव्य-परम्परा इस बात का प्रमाण है। विज्ञान-

विद् प्रिज्म (काच-विशेष) के द्वारा सूर्य्य-रश्मि में सात रंगों को दृष्टिगोचर करता है। उसी प्रकार कलाविद् विश्व के अणु-परमाणु में निहित सौन्दर्य्य की सतरंगी छवि को इसी भाव-चुम्बक के द्वारा ग्रहण करता है। इसीलिये मुझे इस जमाने में भी यह घोषणा करते हुए कुछ संकोच नहीं कि मेरा दृष्टिकोण मूलतः रोमांटिक है। ज्ञान-कांड और कर्मकांड के परे भी एक वस्तु है। और वह है स्वप्न-भांड, यानी कविता।

सतत प्रयत्नशील रहते हुए भी दो-चार रचनाओं में छापे की कुछ गलतियाँ रह गई हैं। शुद्धिपत्र लगाना मैं व्यर्थ समझता हूँ; क्योंकि कविता का पाठक किसी भी प्रकार की रुकावट पसंद नहीं करता—वह पंक्तियों के प्रवाह में बहना चाहता है। अतएव मैं इन अवांछनीय त्रुटियों के लिये क्षमा-प्रार्थी हूँ।

इस पुस्तक के प्रकाशन और सजावट में जिन कृपालु मित्रों से मुझे सहायता मिली है उनके प्रति कृतज्ञता के सस्ते दो शब्द लिखकर मैं उनके अमूल्य साहाय्य का मूल्य आँकने का कुकर्म नहीं करूँगा।

— केसरी

विषय-सूची

मराली

युग-युग से उर्मिल मानस के मोती चुगनेवाली
ओ तुम चिर-संगिनी शारदा की ओ मंजु मराली
तुम जानती उगी इस रेती में कैसे हरियाली
कैसे बना दीन मैं इस मोती - मधुवन का माली

ओ त्रिकाल-दर्शिनी ! सुलभ वे
पहले के - से गान नहीं
जो कि कभी था सरस चन्द्रमणि
अब 'तेलिया पखान' वही

मुख तरल शैशव जगती का
जरठ ज्ञान का बाघ हुआ
बीत गई वर्षा, मानव-मन
आज सिकुडकर माघ हुआ

सुलभ सुधा वसुधा मे—
करनेवालों की मानस - लहरी
उमड सके जिसमें ऐसी
पुष्करिणी अब न यहाँ गहरी

अमरों के खँड़हर में ओ तुम आज कुटी की रानी
बदल गई अब स्वर्ग-मर्त्य की वह तसवीर पुरानी

एक बात है किन्तु कि युग ने
आज हेय को गेय किया
कौन अजान अनाम न जिसको
युग - कवि ने अभिधेय किया

बजी कभी जो वेणु रास की
केवल व्रज - उद्यानो में
गूँजी वह अब गाँव - गाँव के
खेतों में — खलिहानो में

उसी शब्द गुण-सदृश शब्द को
घट - घट बीच अनेक किये
गायक गाते विविध स्वरो मे
वही एक ही टेक लिये

मेरी प्राण - विपंची की जब
जागी नीरवता सोई
जाने क्यो तब प्रथम शब्द में
करुणा की कंपन रोई

मैं वसंत के वशीकरण फूलों—
की चितवन टाल सका
किन्तु भरे भादों में मैं
अपनेको नहीं सँभाल सका

प्रिय न किसे 'अषाढ' की—
अभिनव मंजुल दूर्वो की शाखे
किन्तु जेठ के प्रात-ओस से
भीगी जिनकी है पाँखें—

विरल पात कृश मलिन गात
नित वह्नि-वात उत्पातो से—
कट न सकी जिनकी जड़ पृथ्वी—
से कुठार - आघातो से—

तप की हरियाली आतप की छाया
से है प्यार मुझे
नारी से वढकर लगती माता
सुन्दर - सुकुमार मुझे

इसीलिये ओ मंजु मराली
मेरे ये जितने मोती
निकले है उन आँखो से
जो सुख-दुख दोनो मे रोती

माँ-बेटे भाई-बहनो की प्यार-दुलार लुनाई—
युग-युगात-व्यापी मानव की प्रियजन-मिलन-विदाई

एक अमर यह तत्त्व—जिसे ज्ञानी कहते नादानी
एक अमर यह तत्त्व—यही मेरे मोती का पानी

× × × ×

तेरी ध्वनि तेरी प्रतिध्वनि भी ओ रे विश्व-उदार
मेरा क्या ?—मैं तो नीरव बस पत्थर की दीवार
गूँज उठी तेरी वाणी ही मुझमें बन साकार
मैं आधार-मात्र, बस तेरा ही सारा व्यापार

कहूँ कैसे मेरा उपहार
और यह मेरा मोती-हार
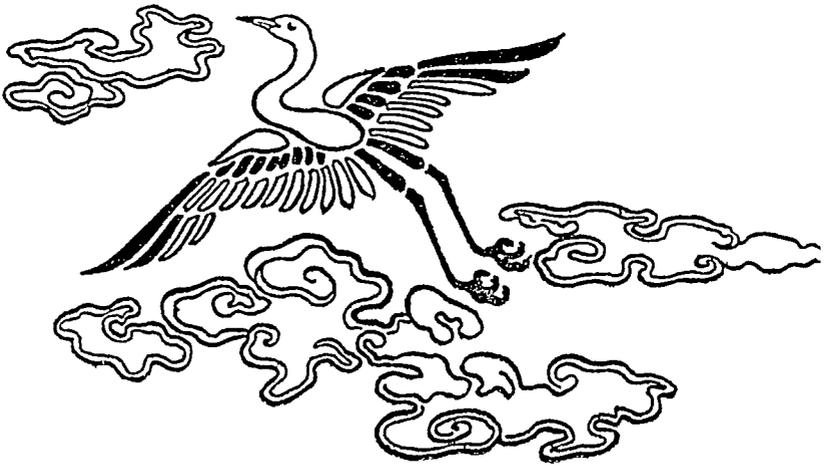
गीत

आँसुओं के हास मेरे
इंद्रधनु - सी उर - उमंगों के पुलक-आकाश मेरे
आँसुओ के हास मेरे

जो न जीवन में कभी उतरी क्षितिज-सी ज्योति - रेखा
झाँकती बन स्वप्न की चिर पूर्णिमा की चंद्र - लेखा
छवि तरल वह आँकने के सतत विफल प्रयास मेरे
आँसुओं के हास मेरे

चाहते अग-जग अथल-थल पंख का विस्तार घेरे
प्राण के केसर मलय में दे डुबो जग के बसेरे
पंख लघु, निस्सीम स्वप्नों के विहंग हताश मेरे
आँसुओं के हास मेरे

विश्ववन की हूक कोकिल-कूक से प्रेरित सलोने
गोद में पतझार की खिल जो पले कंटक-बिछौने
प्रणय के उच्छ्वास-निर्मित कुसुम के मधुमास मेरे
आँसुओं के हास मेरे

उर छिपी वड़वाग्नि ऊपर की तरंग कराह तो रे
गीत तुम चाहे कहो यह विद्ध हिय की आह तो रे
प्रणय-रस से पीर जगती की, लिखे इतिहास मेरे
आँसुओं के हास मेरे
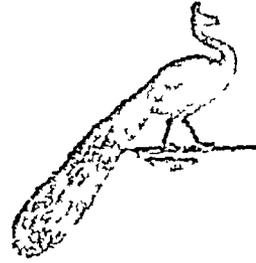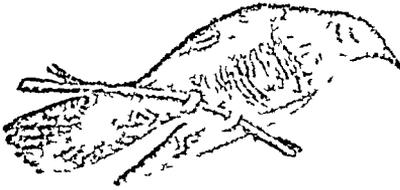
कुहू-केका

विहगवालों - से मेरे प्राण
परों में चित्रित स्वर्ण-विहान

आज विश्व के शून्य कोटरों में भर देंगे गान
विहग-शिशु से मतवाले प्राण

मैं नाचूँगा उन्मुक्त पवन-सा
वन-वन की हरियाली में
मैं भौंरों-सा गुंजार करूँगा
हिय-हिय की मधु-प्यालों में

कोयल का मादक विरह-गान
वनफूलों की मुसकान लिये
मैं फूट खिलूँगा नव वसंत-सा
जग की डालो-डाली में

रे ! आज मदिर मधु-रजनी में
मंजुल मालती - निकुंजों में—
कलियों के उर बेहोश पड़े
मादन मरंद मधु - बूँदों में—
उकसा-उकसा जो प्रीति-आग
विकसाते जग के विपिन-बाग
उन यौवन-स्वप्नों-सा खेलूँगा
शशि की स्वप्निल जाली में

मैं नाचूँगा उन्मुक्त पवन-सा
वन-वन की हरियाली में

पृथ्वी के चंद्रलोक में, रे
मखमली तलहटी में गिरि की—
नीलम की चित्रपटी पर
हल्की तारों-सी कलियाँ चटकीं—
रिमझिम स्वर्गङ्गा निर्झरिणी-सी
चल चाँदी की धारा-सी—
अधरों मे पद्मपराग लिये
चंचलगति टलमल पारा-सी—
वह बाल नवोढ़ा-सी केसर-
कुंकुम - रंजित पद बल खाती
निज रंगमहल की स्फटिक
सीढ़ियों से झमझम उतरी आती—

मैं थिरक उठूँगा उसकी
लोल लहरियों की करताली में

मैं नाचूँगा उन्मुक्त पवन-सा
वन-वन की हरियाली में

रोमंथन करती मृगी जहाँ
शालों के वन में अलसाई—
नीवार-निकुंजों में चमरी
चरती थक लेती अँगड़ाई—
क्रीडाप्रिय कोल - किरात -
अंगनाओं की सुभग विहार-थली—
नव अंगराग मृगमद चंदन-
चर्चित चित्रित वन गली-गली—
वह धातुराग की शिला जहाँ
नव इन्द्रधनुप के रंगों से—
कवि कालिदास की मेघ-कल्पना
रचती भाव - तरंगों से—
छवि की अलका, उस चंद्रलोक की
मधु - राका - उजियाली में
मैं नाचूँगा मयूर-सा
परियों की मधुवन हरियाली में
रे! आज निखिल जग का मर्मर
आलोक-तिमिर संध्या-विहान
दूरागत वंशी के सुर से
उकसाते मेरे विकल प्राण
'उठ रे' कहता कोई पुकार
जग के नायक गायक महान
चाहिये विश्व को सुधादान
चाहिये तुम्हारे अमर गान

कौन रे! यह जो दुआ की
प्रात ही मधु-धार लाई
'हो दया दाता! भिखारिन
मैं तुम्हारे द्वार आई'

राज-पथ सूना अभी
रवि की अरुण किरणें न फूटीं
कुंज में सोये विहंगों की
अभी निद्रा न टूटी

गूँजती है एक स्वर पर
शून्य में मृदु मंद स्वन में
डोलता पवमान ज्यों
मधुमास-चुंबित सघन वन में—

'हो भला सबका, टला
यह मेदिनी का तिमिर काला
किरण-सा बह जाय घर-घर में
दही-घी का पनाला

भिखारिन

हे प्रभो ! जब मानवों की
निधि न वरुणा-सी भरेगी
मुझ गरीबिन की कहो
करुणा - तरी कैसे तिरेगी

अन्नदे ! जग में किसी को
टूट रोटी की न होवे
और मुझ-सी हा ! किसीकी
भाग्य-लिपि खोटी न होवे

हो भला सबका'—श्रवण
चंदन - फुहार पुकार आई
कौन रे ! यह जो दुआ की
प्रात ही मधु - धार लाई

ओ क्षमामयि ! कौन तू
जो चाहती सबकी भलाई
स्वर्ग - आशीर्वाद - सी, यों
भूल जग की अधमताई

मानवी तू पूज्य नारी,
फिर अहो यह दीनताई
मंगला सुर - धेनु ! तेरे
हित बना यह जग कसाई

तू सुधा का स्रोत सखि
पर आज तेरा चाँद-मुखड़ा
ललचता है देख रोटी का
घिनौना एक टुकड़ा

हाय वसुधे ! स्वर्ग की थी
जो अनिन्द्य मयंक - लेखा
पड़ गई उसपर तुम्हारी
पाप-छाप कलंक-रेखा

आ सखी ! तू गोमुखी—
इस द्वार गंगा-धार लाई
कौन री ! तू जो दुआ की
प्रात ही मधु - धार लाई

२

पकड़ अंचल-छोर संध्या की
सखी निंदिया रसा में—
उतरती, पंछी उड़े निज
नीड़ - कुंजों की दिशा में

दिवस - चंचल कर्म - सकुल
विरस मानव - प्राण छलने
झूलने आये दृगंचल
स्वप्न के सुकुमार पलने

किंतु जिस जन का नहीं
इस विपुल वसुधा में बसेरा
आज मैंने उस भिखारिन
का निशा - संसार हेरा

गाँव की मनुहार की
गुलजार की सरहद जहाँ पर
प्रकृति का सीमंत वह
श्रीमंत बरगद - तरु जहाँ पर

एक छोटी झोपड़ी खर-
घास-पात पुआलवाली
झोपड़ी कैसी अरे
वह छिद्रवाली एक जाली

एक कोने में धरे
कालिख-भरे बासन पुराने
कंठ तक जिनमें न पहुँचे
आज तक रे! अन्न-दाने

दो बड़े ढेले मिले जिस
दिन वहाँ चूल्हा बनाते
दिवस ऐसे तीस दिन में
भाग्य से दो-चार आते

दीन प्रश्रयहीन परदेशी
विहग जैसे अकेला
थकित रुक जाता किसी
तरु पर व्यथित हो सांध्य-वेला

रुक गई उस झोपड़ी में
वह भिखारिन विटप-नीचे
कौन जाने स्वप्न में किस
हाय! उसने नयन मीचे

पास के उस विभव-पुर
में जल रही घी की दिवाली
ढल रही छल-छल सुरा-
शरबत-भरी घर-घर पियाली
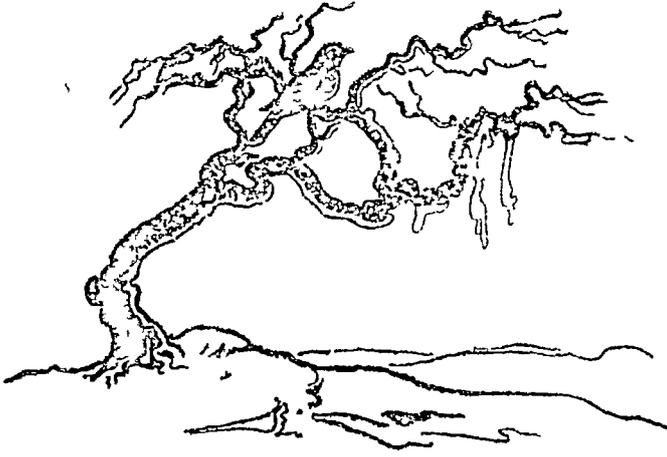
निर्वासित विहग

१

दूर मेरी सूनी कुटिया
विहग परदेशी हूँ दुखिया

उदयाचल की स्वर्ण तलहटी—
में वह मधुवन मेरा
विधुर विश्व की बालस्मृति
हँसती बन जहाँ सवेरा

जहाँ पहुँच अनजान प्रकृति ने
प्रथम केलि-विधि ठानी
टलमल निर्झर गीत नवल
कुंकुम-रंजित पट धानी

जिसे पिलाती प्रथम उषा
अनुरागासव की प्याली
जिसका ही उच्छिष्ट मात्र
पश्चिमा - अधर पर लाली

प्रथम रश्मि की खग-कुल
करता जहाँ प्रथम अगवानी
जगने हेतु प्रथम सोती है
जहाँ प्रथम निशि - रानी

ले जीवन - सौदा पयोद जब
प्रथम गगन - पथ आता
जहाँ पपीहे के पी - पी -
रव में प्रिय - परिचय पाता

बाल अनिल दक्षिण-प्रदेश से
आ अनजान भुलाता
जहाँ प्रथम उपवन-कुञ्जों में
मधुर गीत निज गाता

जिसने प्रथम मौन जगती को
साम - गान सिखलाया
जीवन का वंधुर पथ जिसने
प्रथम मसृण ऋजु पाया

रजत-सेज पर जहाँ स्वर्ग से
भूली उतरीं नदियाँ
केवल जिसकी गोद खेलती
थीं बचपन में सदियाँ

करुण, नालन्द ! करुण अवसान
कुटिल अति दारुण नियति-विधान
आज भूशायी जग - कल्याण
आज भूशायी भारत - प्राण
मूक मेरा अतीत आख्यान
मूक मेरा अतीत वरदान

मूक पड़े भू-गर्भ गहन में रे नालन्द ! महान
आह ! विश्वगुरु ! मूक तुम्हारा प्रेम-अहिंसा-गान

२

मूक मेरा अतीत ध्रुवतारा
जहाँ प्रथम तम - ग्रस्त विश्व ने पाया एक सहारा
मूक मेरा अतीत ध्रुवतारा

एक - एक यह ईंट पुरानी
कहती है कुछ कसक-कहानी
इन टीलों के गुहा - गर्भ में सोया स्वर्ग हमारा
मूक मेरा अतीत ध्रुवतारा

ये समाधि - तल्लीन तपस्वी
स्तूपों में ये पड़े यशस्वी
इनकी दिव्य गौतमी द्युति से द्योतित था जग सारा
मूक मेरा अतीत ध्रुवतारा

इन सूने मैदान - दरों में
झुरमुट - झाड़ - भरे नगरों में
कंथा और कमंडलुवालों ने जग - भाग्य सँवारा
मूक मेरा अतीत ध्रुवतारा

मठ - बिहार यह खाली - खाली
सूनी पूजा की यह थाली
भिक्षुक ! देखो सूना है यह दीपक अर्घ्य तुम्हारा
मूक मेरा अतीत ध्रुवतारा

३

शून्य - शून्य मैदान - खेत ये, शून्य प्रकृति की साँस
शून्य आज नालन्द, शून्य है आसपास आकाश
शून्य ऋषि-मुनियों का आवास

अरे ! गहन इस सूनेपन में सुमन खिला यह कौन
ठहर प्रदर्शक ! बता जरा यह कौन तपस्वी मौन—
इस खँडहर के तिमिर-गर्भ में यों नितान्त एकान्त—
हँसता है, रोता समस्त जग निर्जन प्रान्तर - प्रान्त
युग-युग की साधना-तपस्या का यह चिर - वरदान
अरे पथिक ! शाश्वत इस खँडहर में दीपित अम्लान—
दिलाता उस अतीत का ध्यान

कोकिल से
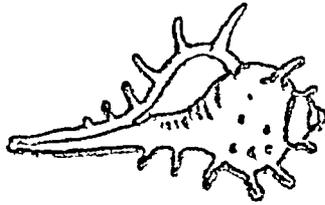
हेमंत में मेरा प्यारा अनुज 'रामायणशरण' चल बसा था। उसके बाद ही होली के दिन जब गाँव के लोग रंग खेल रहे थे, मैं अपनी अमराई में बैठा रो रहा था। प्रकृति का गायक कोकिल पंचम में अलाप रहा था—झुटपुटे की वेला! हृदय की वेदनाएँ इन पंक्तियों में फूट पड़ीं!

गा कोकिल बड़भागी
तू गा किसलय केसर-कुंकुम के आजीवन अनुरागी
तू गा कोकिल बड़भागी

केवल वसन्त के पुण्य-पर्व में
तेरा नव आह्वान हुआ
केवल मधु-मदन-मलय-रंजित-
शिंजित तेरा कल गान हुआ

ओ भाग्यवान कवि! प्रकृति-उर्वशी
के अरमानों के गायक—
तेरे स्वप्नों की कूक उठी औ'
जग में स्वर्ण-विहान हुआ

गा सुख की दुनिया के वासी,
कुछ त्वरा और स्वर में भर ले
फिर ठूँठों को रसाल, मेरे
इस मरु को हरा-भरा कर ले
ओ धन्वन्तरि ! अमरों के मन-
मोहन नन्दन के अलबेले
फिर एक बार मेरी वृद्धा
वसुधा के जरा-मरण हर ले
पतझड़ ने कड़ी तपस्या कर तेरी छवि-झाँकी माँगी
तू गा कोकिल बड़भागी

कोकिल ! तुझ-सा ही भाग्य मर्त्य के
कवि का काश कहीं होता
केवल हरियाली में जीवन
यौवन - मधु - प्याली में सोता
तो सच तेरी कल कंठ-माधुरी
पर न मुझे व्रीड़ा होती
सुन स्वर-लहरी तेरी न कभी
मुझको ईर्ष्या - पीड़ा होती
तू उड़ता है मधुमास - मदिर
क्षिति - अंबर में उल्लास लिये
मतवाला थिरक रहा मादक
वसन्त की सुरभि वतास पिये
है चाह कि मैं भी तुझ-सा ही
आशा की फुनगी पर नाचूँ
जो कूक उठे उर-उर में ऐसी
मुग्धकरी कविता बाँचूँ

पर हाय ! लुट गये हैं मेरे वे
आशा के प्रवाल - मोती
अन्यथा कंठ किसके कोकिल
काकली अधिक मुझसे होती

उड़ते पीले पत्रों-सा है मेरा कवि आज विरागी
तू गा कोकिल बड़भागी

तू गा कोकिल ! गा चिरकिशोर
गन्धर्व कुँवर तू चिरसुन्दर मानव की दुनिया है कठोर
तू गा कोकिल ! गा हे किशोर

कोकिल ! गा, तूने चैत्ररथी वन
के मीठे फल हैं खाये
स्वर्गंगा की उल्लोल - उर्मियों
में स्वर सप्तक सरसाये
झंकृति रसवन्ती महती की
जो गगन-गुफाओं में बिखरी—
सुरपति के वैजयन्त से जो
उठती मादक गायन - लहरी
इन चंचु-पुटों में जब समस्त
भर लाया अमरावती, सखे
तब दीपित क्यों न बने दिगन्त
में यह वसंत - वसुमती, सखे
ओ उड़नेवाले ! ओ कोकिल
मानव-कवि की क्या कथा कहूँ
किस अलका की प्रेयसी रूपसी
से विरही की व्यथा कहूँ

तू क्या जाने दुख की कचोट
प्रियबंधु-वियोग न जब जाना
तू क्या जाने कितना उलझा
नर - जीवन का ताना - बाना

कोकिल ! तुझ - सा ही मैंने भी
जी-भर जीवन को प्यार किया
तुझ-सा ही प्रकृति-सुन्दरी के
पद-पूजन को स्वीकार किया

जीवन का वह मधु-प्रात ! स्नात
छवि मैं उदयास्त-विहारी था
सौंदर्य-देव की विभु-विभूति का
एकमात्र भंडारी था

उत्फुल्ल एक अंभोज - सदृश
था विश्व मदालस लहराता
मेरा मन रूप - गंध - उन्मन
गुन-गुन अलि-दल-सा मँड़राता

जब रूप - राशि पुलकित उठती
चुम्बन की चाह विशाल हिये
तब प्रकृति - प्रेयसी ने फूलों के
विकच गुलाबी गाल दिये

ले नक्षत्रों का विजय-माल
कलधौत कौमुदी - मन्दिर मे
शशि का किरीट पहने आता
वह अलख पुरुप जब अंबर में—

नीरव निशीथ, झुकता-सा नभ
उठती-सी वसुधा पुलक-भरी
मैंने सीखी कवि-कला, अरे
उस पृथ्वी-स्वर्ग - स्वयंवर में

वह एक स्वप्न ! हा हंत
आज कैसे वह स्मृति-आघात सहूँ
इस उमड़ी मधुऋतु में कोकिल
कैसे पतझड़ की बात कहूँ

मैं क्या गाऊँ, सामने देख
वह नियति व्यंग्य-परिहास किये
हँसती है और कलपता मैं
अपना अतीत-इतिहास लिये

यह मानव का मरघट काला दिशि-विदिशि सिसकता दुख अथोर
उड़ जा कोकिल ! उड़ रे किशोर

× × ×

उड़ जा अन्यत्र कहीं पंछी
यह दुखियों की बस्ती मेरी
उड़ जा, लुट जायेगी इस मरु में
मनोयोग - मस्ती तेरी

इस अभिशापित जगती पर फैली
विरह - मरण की है छाया
रोने को बस रोने को यहाँ
न हँसने को कोई आया

दो क्षण के बाल-घरौंदे को
हम जीवन या यौवन कह लें
दो क्षण हरियाले पौधे
को हम मधुवन या नन्दन कह लें

कोकिल, कोकिल, नादान अरे
कोकिल ! न भूल इस माया में
मत मचल धरा के इस सुहाग-
मंडित रसाल की छाया में

तू उतर न भू पर अरे स्वर्ग के
देवदूत अलकावासी
यह छवि छायाग्राहिणी, सखे
रह दूर-दूर, ओ अविनाशी

अन्यथा गँवा देगा भोला ! यह
गति अमन्द, यह स्वर-मरन्द
कट जायेंगे ये पंख, विधुर
बन जायेगा चिर-निरानन्द

उड़ जा कोकिल नभ-कुंज-ओर
गंधर्व-कुँवर तू नित नूतन, मानव का जीवन है कठोर
उड़ जा किशोर ! हे चिर किशोर

पचीस

गीत

युग-युग के हिय-अरमान अचानक दले गये
सखि ! दो दिन के पाहुन मेरे वे चले गये

कुछ क्षण आये सपने-से वे जीवन में
कर परिणत मेरा मरु कंचन-मधुवन में
मैं नहीं जानती थी रजनी अँधियाली
रचती थी सखि ! मेरे सुहाग की लाली
उस दिन विरहिन जगती की श्यामल वेणी
कुंकुम भर गई उषा चढ़ किरण-निसेनी
पाये मैंने हँसते — खोये धन अपने
वे खोज दीर्घ दिवसों की निशि के सपने

क्षण-भर देखा पर आह ! नियति-कर मले गये
सखि ! दो दिन के पाहुन मेरे वे चले गये

कितना प्रिय है सखि ! सुन्दरता से नाता
वह धन्य इसे जो क्षण-भर भी अपनाता
बन जाती वह शाश्वती स्वर्ग की झाँकी
क्षण के प्याले जो घूँट पिलाता साकी
क्षण-भर की थी मुसकान क्षणिक जीवन था
पर सफल-साधना का प्रपूर्ण सिरजन था
क्षण-भर का भी सहवास तपस्या-फल है
कंटकमय जीवन-पथ का सखि ! सबल है
सुन्दरता यदि जीवन में चिरता पाती
होता कैसे तब स्वर्ग मृत्यु की थाती

परदेशी थे आये भूले फिर चले गये
सखि ! दो दिन के पाहुन मेरे वे चले गये
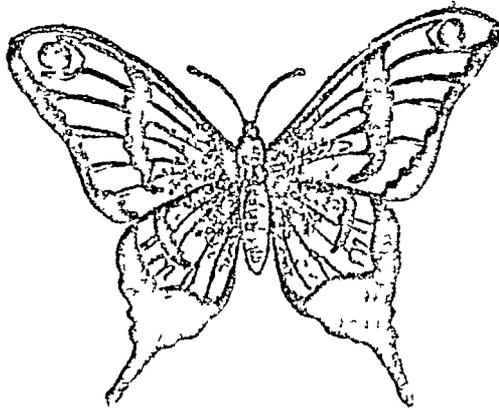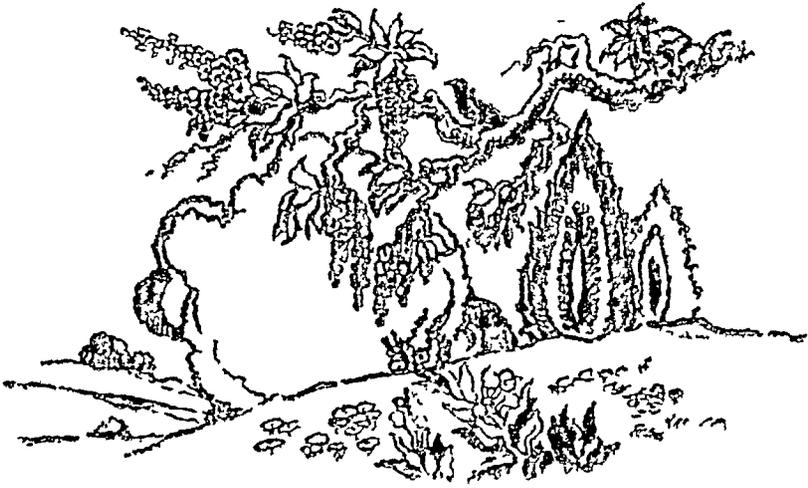
वसंतोपहार

आज रसाल - कुंज में कैसी मादकता छाई
कोकिले ! कौन संदेशा लाई

'आज प्यार का पर्व' प्राण
सुनते हो यह अमृत वाणी
आज मेदिनी के आँगन
ऋतुपति की होती अगवानी

क्या जानें क्या प्रात द्रुमों से
दक्षिण - पवन पुकार उठा
सहसा पर्ण-पर्ण से यह
कैसा उछाह का ज्वार उठा

'मैं भी कुछ देता वसंत को'
कण-कण में यह आह जगी
जग के विधुर पुरातन को
नूतन बनने की चाह जगी

मधुर मधूत्सव में सर्वस्व-
समर्पण ही उपहार, सखी
अरे! तभी तो फूट चला
ठूँठों के उर भी प्यार, सखी

वृंत-वृंत में कली-कली में
केसर-कुंकुम-लास चढ़ी
मैं भी योग्य बनूँ प्रियतम के
उर-उर में अभिलाष बढ़ी

गिरि की सोई साध उमड़
निर्बंध तुषारों में धाई
'बिछुड़ न जाऊँ कहीं'
क्षणिक ही तो प्रियतम की पहुनाई

तुम क्या दोगे प्राण! सुनो वह
गाती मधुवन की रानी
एक गीत उन्मुक्त हृदय का
एक बूँद हिय का पानी

प्रिय प्राणों के पाहुन को
उपहार हृदय की कसक-कथा
अरे! खींच लाती उनको
बरबस पतझड़ की मूक व्यथा
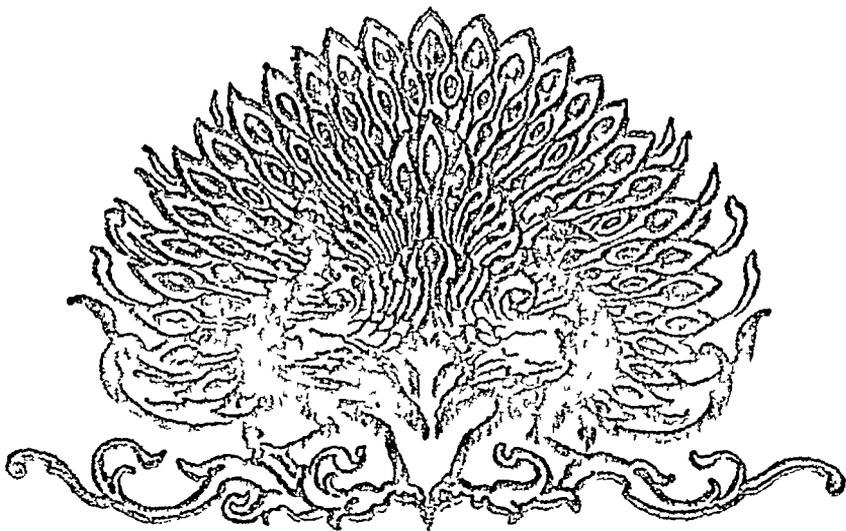
मयूरी-गीत

आज सखि ! प्राण न ये बस के
कौन मनावे इन्हें उमड़-घुमड़े जब घन पावस के

प्रथम पवन डोली बरसाती
सिहर उठी वन की तरु-पाँती
सजनि ! चिहुक धड़की है छाती

सुन मेघोत्सव-गीत मधुर मानस-गामी सारस के
आज सखि ! प्राण न ये बस के

बालम मेरे वियति - विहारी
मैं वनवासिनि राज - दुलारी
कब झुलसी मेरी फुलवारी

बिछ न गये जब कण-कण में वे मृदुल कलश रस के
आज सखि ! प्राण न ये बस के

मैं नाचूँ, नाचो तरु-डाली
उठ जागो वन की हरियाली
भर दो जग, मेरे वनमाली

खाली रहे न प्याले आज किसी ऊसर-बेकस के
आज सखि ! प्राण न ये बस के

सज जा और जरा जीवनधन
पहन नवल सतरंगा कंकण
आज निछावर तुमपर तन-मन

विकल प्राण ये बिँध तेरे छवि-शर से प्रिय ! कसके
आज सखि ! प्राण न ये बस के

कनक - छाया-वन छोड़ विहंगनि
चलो चलें उस कोलाहलमय पर्ण-कुटी में रंगिनि

मुक्त बन ओ स्वप्निल जग-वंदिनि
कनक - छाया वन छोड़ विहंगिनि

माना, सुन्दर है जग यह
कुंकम का नव परिधान यहाँ
नीलम के अधरों पर खिलती
मोती की मुसकान यहाँ

लख मुग्धा छवि के दृग-कोरों
से चितचोरों—फूलों को
कभी यहीं पर स्वर्ग रहा
होगा—होता यह भान यहाँ

सचमुच दूबों की हरियाली
पर सुन्दरता बलिहारी
चू पड़ते इनकी छवि पर
नभ के भी गीले प्राण यहाँ

चलो चलें पर धूप-छाँह वाली
उस दुनिया में सजनी
ओ अजान मुग्धे ! मिलता है
पीड़ा में वरदान यहाँ

२

क्या कहती, मैं भूल न सकती
स्वप्नों की यह प्रिय अलका
रूप बदलना प्रकृति-रूपसी का
वह अभिनय प्रतिपल का

निर्झर के वे मधुर गीत
कुंजों का उनको दुहराना
पिघल शिला का गीतों से
उनके चिकना ऋजु हो जाना

वह ऊषा का बाल नर्तकी
सरिता-पद अलता लाना
एक अंगभगी में ही
अल्हड़-सी उसका मिट जाना

वह प्रगल्भ नभ का नव
इन्द्रधनुष के मिस चुपचुप आना
चिरकुमार हिम-परियों के सिर
सिंदुर - बिन्दु लगा जाना

मैंने हिम की धवल आरसी में
अपना खींचा खाका
देख जरा कवि ! इसमें तो
मैंने जग की खींची राका

माना यह विचित्र चित्रसारी
अति सुन्दर काव्यमयी
रोम - रोम से हो पुलकाकुल
झड़ते केसर-गान यहाँ

चलो चलें पर धूप-छाँह वाले
उस जग-मग में सजनी
ओ अजान मुग्धे ! मिलता है
पीड़ा में वरदान यहाँ

३

सच है, तुमने विश्व-वेदना-
वीणा से मिलकर गाया
जग की ऊष्मा के निदाघ पर
सावन - भादो बरसाया

चातक-सँग जब तुमने गाई
करुण रागिणी बरसाती
विरही जग को मिली कहीं
तब कल्याणी सुन्दर स्वाती

प्रथम आदिकवि की वाणी में
प्रथम विश्व की करुण-कथा
प्रथम शब्द में प्रथम छन्द में
फूटी वही वियोग - व्यथा

प्रथम मेघ की झड़ी, यक्ष की
अश्रु - लड़ी हरि-गिरि - तीरे
बही मंजु मंदाक्रांता-गति
से तुम ले धीरे-धीरे

माना विभव - व्योम में
भी काली अवसाद-घटा छाई
हाँ, परियों की अलका में
भी रोते विरही प्राण यहाँ

चलो चलें पर धूप-छाँह वाली
उस दुनिया में सजनी
ओ अजान मुग्धे ! मिलता है
पीड़ा में वरदान यहाँ

४

घास - फूस की दुनिया वह
वैभव की ठुकराई सजनी
चलो बसेंगे वहीं छोड़
यह नन्दन-अमराई सजनी

छोटी - सी झोपड़ी एक
चौराहे पर गुलजार रहे
इधर - उधर श्रम - जीवी
दीनों का प्यारा परिवार रहे

एक - एक आवाज हँसी-
रोदन जो घर - घर से आये
ध्वनित तुम्हारी तंत्री में
हो झंकृत जग में छा जाये

छै पैसे का रोज, दासता
की निशि-दिन कफनी बाँधे
खींच रहे जो विभव देव का
दुर्वह विकट शकट काँधे

उन कंकाल-शेष प्राणों की
गरम उसाँसों में मिलकर
गाओ ग्रीष्म-ध्वंस-कारी अयि
बादल राग उमड़ घिरकर

मानवता की हूक कूक में
भर पंचम स्वर में गाओ
क्या तब भी ऋतुराज न
आवेगा इस दुनिया में सजनी

६

वहाँ कौन वह दीपशिखा-सी
मुखड़े पर दुख की रेखा
सुलझा रही कौन उलझन है
राहु-ग्रस्त ज्यों शशि-लेखा

अभी खड़ी थी सरिता-तट
जल में लख अपनी परिछाईं
लाल हुए थे गाल प्रथम
फिर छुईमुई-सी कुम्हिलाई

कल स्वर्गारोहण था उसका
आज विश्व लगता फीका
मिटो न हाथों की हल्दी, पर
मिटा हाय सिन्दुर-टीका

रो कुहिकिनि ! रो, मिटा पाप-
अभिशाप पिशाचिनि ! जगवी का
फिर न चढ़ेगा इस माथे पर
वह प्यारा सुहाग - टीका

पी मेरी भँवरी ! विशाल
मधुचक्र वेदना का जग है
पीड़ा में तपना जगती की
सफल साधना का मग है

कवि ! तुझको जगती में ही जो
रुचिर स्वर्ग - सम्पर्क मिला
क्या बदले में शाश्वत यह
आँसू का मृदु मधुपर्क मिला

शरद्-सुषमा
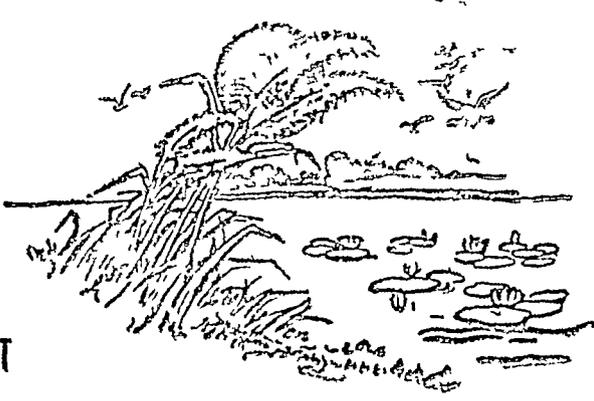
१

रसभीनी समीरण नींद-भरी
जगती का दुकूल हिलाने लगी
कुछ होश में आ सरिता उफनाई
जवानी के घाव सुखाने लगी
वन-वीथियों में नव मोतियों से
लतिका निज माँग सजाने लगी
दुलराने लगी जग को सुषमा
हँसती मैं सभी को हँसाने लगी

२

लहराते लुभावने धान की श्याम
लुनाई से व्योम लजाने चली
मृदु हीरक ओस-कणों की छटा
पर तारकों को तरसाने चली
चल चंदन चाँदी की धारा बहा
नभ-देवसरी को लुभाने चली
उग जाओ दिवाली के चन्द्र मेरे
मैं अमा को भी राका बनाने चली

३

अभी कोमल गेहूँ के राज-किशोर

सनी रस में सुख-सेज लसी

बड़े भोरे जगाती ले दूध-भरी

परिचारिका दूब हरी कलसी

सँग झूलती वायु के झूलने में

लद जाती है चुम्बनों से अलसी

झुक चूमती झूमती बावली-सी

सरसों बरसों विरहाकुल-सी

४

सखी काँस! सँभालो जरा निज वेणी

चुए न कहीं यह चन्द्र-लड़ी

झकझोरे न बालम वायु

अभी टटकी गुँथी मोतियों की खिकड़ी

अरे! धीरे सटो लिपटो तितली

लच जाय न कोमलता की छड़ी

खिल फूट बही प्रतिरोम से आज

जवानी की पूनो की फूलझड़ी

५

चल केतकी-कुंजों में सौरभ का

छवि का एक देश सजाऊँगी मैं

वहाँ फूलों की सेज सुला

प्रिय खंजनों की अँखियाँ दुलराऊँगी मैं

घनी बाँस की नीलम पर्ण-कुटी में

विहंगों का राज बसाऊँगी मैं

झुलसे इस विश्व के कोटरों को

अब चन्दनबाड़ी बनाऊँगी मैं

किस विरह की पीर से रहती भरी
बोल कुछ तो बोल प्यारी बाँसुरी

बेधती हिय तीर-सी तेरी व्यथा
कौन-सी यह कसक कैसी दुख-कथा
बज रही जिसकी करुण-स्वर-रागिणी
कौन-सा धन खो गया प्रिय-वादिनी

ओ सुहागिन विश्व-अधरों की प्रिया
सींचती मधुधार से जग का हिया
माधुरी यह धन्य जग जिसका वशी
एक तू ही विश्व में सखि ! उर्वशी

फिर बता किस शोक से तू बावरी
बोल कुछ तो बोल प्यारी बाँसुरी

क्या कहूँ जो उठ रही दिल आह है
सिसकती सी एक अपनी चाह है
छिद गया हिय विश्व-शूल-बबूल से
कठिन ऐसो पिय-नगर की राह है

निज सुखों की वलि चढ़ा कल-नादिनी
आज मैं जग की बनी सुख-दायिनी
एक दिन था, हरित वन के अंक में
झूलती मैं मखमली पर्यंक में

वह अनूठा स्वप्न का संसार था
प्यार का जीवन हरा-गुलजार था
हिय-उमंगें बढ़ क्षितिज के छोर से
झूम टकरातीं पवन झकझोर से

विपिन के हिय की तरंग-झकोर सी
भूमि के सिर नवल नीलम-मौर-सी
मैं हुलास-विलास के पलने पली
निखिल वन की लाड़िली लोनी लली

लचक जाती अंग-अंग उभार से
मैं अलस तन्वी झुकी छवि-भार से
चूम मेरे गाल गिरि की छोकरी
गुदगुदी देती मचा वह अप्सरी

छेड़ती फिर रस-भरी मृदु रागिणी
आग उकसाती हिये वह नाजनी
दूर देश-विदेश की सुकुमारियाँ
छवि-वनों की मुग्ध राजकुमारियाँ

बैठ मेरे गरम पर्ण - हिंडोल में
झूलती हिलमिल उमंग-किलोल में
अलसयौवन प्रिया पिय-छतिया सटी
कब न जाने शिशिर की-रतियाँ कटीं

आह रे जीवन कठिन यह चोट है
आज तेरी एक याद कचोट है
मिट गई है जगत् की मधु-यामिनी
लुट गई मेरे हृदय की चाँदनी

दूर कर मुझको स्वबन्धु स्वदेश से
दूर कर रे निठुर! अपने देश से
फूँक दी गुरु-मंत्र-सी नव चेतना
प्राण-रन्ध्रों में निखिल जग - वेदना

करुणा रे वरदान दुस्तर यह प्रथा
कौन लेगा मोल त्रिभुवन की व्यथा
किन्तु पीड़ा ही पुजारिन को मिली
भीख में इस विश्व की पुर-गृह-गली

निखर जीवन तप्त कांचन-रीति से
शुद्ध - बुद्ध हुआ जगत् अनुभूति से
आज प्राणों में भरी जग - आह है
बूँद में रे सिंधु-ज्वाल अथाह है
किन्तु धीरे देव! धीरे फूँकना
एक अपनी भी सिसकती आह है

१

जो क्षण में कर दे इन्कलाब
वह कोई जादूगर होगा

मिट्टी के पुतले छू जिसके
हाथों से ऐसी चमक उठे
कीचड़ में पड़े घिनौने
घोंघों में नव मोती दमक उठे

यह कौन कला, अपरूप
कौन-सा नवल वसंत यहाँ आया
जिसके प्रसाद निर्गंध जन्म के
ये किंशुक भी गमक उठे

मिट्टी के ये पुतले टेढ़े-
मेढ़े कच्चे - टुच्चे अदने
गौरव से भव से हारे-
दुत्कारे घूरों की धूल - सने

तू कौन तपी ! ओ रे कुलाल
तेरे आपाक-पाक में तप—
मंगल प्रवाल-से गृह-गृह में
ये जगमग कंचन-कलश बने

मिट्टी के पुतले ! आज कठिन
चट्टान - शिला ये हूल चले
चढ़ अग्नि-सेज मृत्युञ्जय ये
प्रह्लाद-सरीखे फूल चले

"दानव मरते-मारते, अरे
तू धर्मक्षेत्र का मानव है"—
ध्वनि सुनी और सहसा सौ-सौ
ईसा सूली पर झूल चले

मिट्टी - पुतलों को अमर करे
वह कोई कवि-नागर होगा
जो क्षण में कर दे इन्कलाब
वह कोई जादूगर होगा

२

जो क्षण में कर दे इन्कलाब
वह कोई जादूगर होगा

ये रतन-ज्योति के चौदह क्या
चौंतीस कोटि जो दीप रहे
खोये, सोये युगांत से मोह-
उदधि जो कोरे सीप रहे

वह फिरी छड़ी जादू की
आंदोलित उद्वेलित हुई दिशा—
सब गुँथे एक ही तार प्रथम
जो रंक और अवनीप रहे

वह पार्थिव शिव, वह पूर्ण पुरुष
जो पिये आप विष का प्याला
बस एकाकी समस्त मानव-
सागर - मंथन करनेवाला
अब खुला भेद इन मिट्टी के
पुतलों में थी अमृत-कलसी—
प्रत्येक अंध खँडहर में थी
उर्वशी छिपी ले उजियाला

उसके हाथों में बागडोर—
यह देवासुर-संग्राम चले
उसकी मोहिनी कला से फिर
जगती के दानव जायँ छले
फिर धर्मक्षेत्र में धर्म-पुरुष का
श्रृंगीनाद हुआ उठ रे
इस उदयाचल-तलहटी-बीच फिर
सुख-सुहाग का बाग फले

यह इन्द्रजाल जो रचे अरे
वह कोई नटनागर होगा
जो क्षण में कर दे इन्कलाब
वह कोई जादूगर होगा।
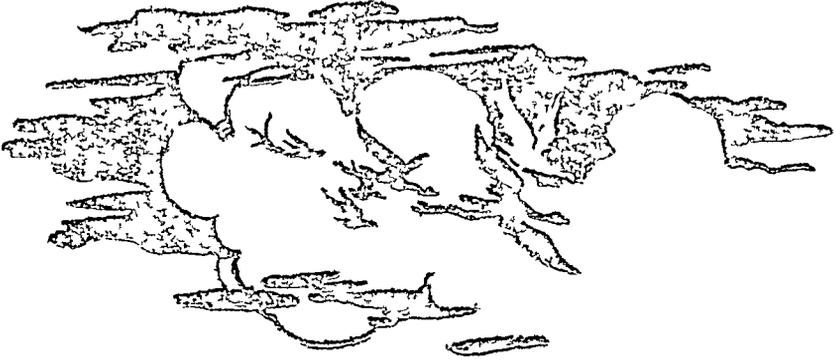
सांध्य-विहग

प्रिय ! एक बार फिर गा जा

छोड़ गगन की शून्य कुटी, वसुधा में सुधा बहा जा
प्रिय ! एक बार फिर गा जा

किस अदृश्य की रिक्त गोद में मुक्त गगन-उपवन में
खोज रहे हो अन्धकार में, भूले सघन गहन में
जगती के मधुवन के ललन ! कहाँ वह सुखद बसेरा
होती है निशि जहाँ वहीं होता है स्वर्ण-सवेरा

शून्य सुप्त है, आ अपने कलरव से इसे जगा जा
प्रिय ! एक बार फिर गा जा

जीवन का पलपल बीता जिस ममता-सने सदन में,
प्राणों की साँसों से जिसके अकथ अनंत चयन में
खर-पातों का नीड़ उषा का प्रथम सुहाग-झरोखा
यही स्वर्ग है, हुआ तुम्हें किस झूठ स्वर्ग का धोखा

अरे, लौट आ लौट विहंगम ! खुला पड़ा दरवाजा
प्रिय ! एक बार फिर गा जा

लिपटी है जिसके प्राणों में तेरी ममता-माया
खिंची हुई मानस-पट जिसके तेरी धूमिल छाया
अरे वेदना के पुतले ! क्यों उससे यों घबराया
ठहर तनिक ओ ठहर अभी क्या खाया है क्या गाया

ताल-ताल से डाल-डाल विटपों की फिर सरसा जा
प्रिय ! एक बार फिर गा जा

खोज रहे कब से बेसुध बेचैन पंख फैलाये
अहो विहग नादान ! अभी सुख-दुख कुछ जान न पाये
कहाँ शान्ति है वहाँ, वहाँ दुखिया-ही-दुखिया सारे
अरे फफोले हैं अम्बर के हिय के झिलमिल तारे

सपना है सुख-शांति वहाँ, अपना है जो अपना जा
प्रिय ! एक बार फिर गा जा
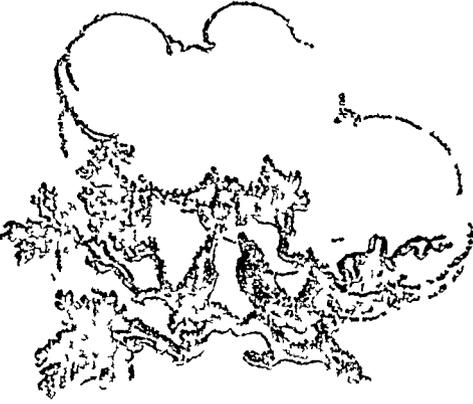
पपीहा

चिरपिपासा की कहानी

मैं व्यथित युग - युग प्रतीक्षा
की चिरंतन विश्ववाणी
चिरपिपासा की कहानी

पंख ये मैंने सँभाले
प्राण - पाहुन के नगर में
उड़ रहा हूँ, जन्म से ही
उड़ रहा पिय की डगर में

एक व्रत तिरती रही
मँझधार जीवन के भँवर में
'पी कहाँ' बस 'पी कहाँ' की
टेर शाश्वत प्राण स्वर में

पर न पाया वह किनारा
हो जहाँ पिय की निशानी
चिरपिपासा की कहानी

झुलस दाघ - निदाघ से
जब बन गई पाषाण काया
घुल चुके थे प्राण दाहक
थी दुरन्त मृगाम्बु - माया

बेकसी की आह टकराई
गगन के नयन - सर से
उमड़ सावन के जिगर से
मोतियों के विंदु बरसे

किन्तु अर्क - जवास के हिय
दाह कैसी, प्राण ! बोलो
हो गया अभिशाप क्यों
यह विश्व का वरदान बोलो

एक लघु कण की पिपासा
यदि मिटी न प्रपात क्या वह
द्रवित प्रस्तर से झरें झरने न
यदि बरसात क्या वह

बूँद में हो तृप्ति - स्वाती
खोजता वह सिन्धु दानी
चिरपिपासा की कहानी

धवल श्याम प्रताम्र वारिद
अचल शिखरों पर अँगड़ते
तृषित जगती के दृगों में
हिम - शलाका - सा उमड़ते

छविमयी छाया प्रभा-तरला
क्षितिज की तलहटी में—
यह किसी की रूप-रेखा
खिंच गई मरकत-पटी में

घन-पवन प्राचीर
प्रतिच्छायित नगर ज्योतिःकणों से
यह बसेरा तो पिया का
'पी कहाँ'—पूछा घनों से

क्षणिक यह प्रतिबिम्ब रे
छविबिम्ब स्वाती का सलौना
सतत मोतीझालरी में
इन्द्रधनुषों का बिछौना

खोजता चिर ज्योति-छाया
की अमर पिय राजधानी
चिर-पिपासा की कहानी

बज विपञ्ची, 'पी कहाँ' की
टेर से यह शून्य भर दे
'चाहिये कुछ और' अमर
अभाव से जग पूर्ण कर दे

मुक्त अन्तःपट दशों दिशि
से बहे आलोक-धारा
चिर उड़ूँ चिर अग्रसर
पिय के क्षितिज-पुर का किनारा

सतत चुम्बित सघन घन से
विश्व हो सरसब्ज न्यारा
हरित शाद्वल-पूर्ण जीवन
घाटियाँ हों ज्योति-द्वारा

छेद संसृति-व्याधि पंकिल
तरल जीवन के सरों में
चिर उषा के स्वर्ण-युग में
विकच मानव-पद्म प्यारा

चाह रे, मेरे पिया
ऊसर सजे परिधान धानी
चिर-पिपासा की कहानी

चकोरी

१

चुगती चिनगारी कि जले
प्राणों में ऐसी प्यास पिया
युग-युग बुझे न, दृग पीवे
शाश्वत तेरा हिम-हास पिया

हिय पीवे अंगार नयन में
चुए अमिय-रस-धार पिया
होड़ आग-पानी की रे
कहता जग जिसको प्यार पिया

कठिन प्यार ! क्षण-क्षण की विषम
प्रतीक्षा जिसके हैं मानी
अरे प्यार ! ओ कल्प-कल्प की
लगन हृदय की दीवानी

पली जहाँ अंचल - छाया में
उससे क्यों इतनी ग्लानी
तज वसुधा की चाह
चली बनने तू चन्द्रलोक-रानी

"प्यास बुझेगी मृग-मरीचिका में
कैसी यह नादानी
करे प्राप्य की खोज लगन जो
मन की वह चिर-कल्याणी"

यहाँ साधना को पागलपन
कहते विज्ञ विश्व-ज्ञानी
ऐ रे मेरे प्राण ! शून्य में
कैसी निधि तूने जानी

जाना प्राप्य - अप्राप्य न
जाना तुझको केवल एक पिया
आह ! न लूँगी मैं विवेक
देकर अपनी यह टेक पिया

स्वप्नमयी जग से न्यारी मैं
चिर - वियोगिनी सुकुमारी
ज्वाला की है सेज और
आहों की मेरी फुलवारी

चिर - तपस्विनी, बैठ प्रेम -
पंचाग्नि बीच जपती माला
एक बूँद अमृत के हित मैं
जन्म - जन्म से विष-प्याला—

पीती हूँ सोल्लास अमर -
विष पी मीरा मैं मतवाली
तन-मन बेंच अरी मैंने
यह विरह-रतन-निधि है पाली

झूल-झूल सूली पर
जीते - जी ईसा होना सीखा
एकव्रता मैं सती - सुहागिन
चिता - सेज सोना सीखा

विरह - मृत्यु - विजयी
मृत्युञ्जय है मेरा अनुराग पिया
जलती हिय की आग इधर
धुलता है उधर सुहाग पिया

मिली जलन की लगन
साधना का चिराग यह नूरानी
उदय - अस्त छूनेवाले
स्वप्नों की बस्ती मस्तानी

और प्राप्य क्या ? तुही बता
ओ जग के स्वप्नहीन ज्ञानी
यह तो अमरावती ! जिसे
मरघट कहता तू वीरानी

बनजारे का सफर
परख पाया जो है मोती प्यारा
एक सफर भर — अरे
क्षितिज जब उसका जीवन-ध्रुवतारा

एक खोज - भर ! अन्त - हीन
यह पंथ, इयत्ता कहाँ ?—कहो
लैला कहाँ मिली मजनूँ को
अरे मर्त्य, तुम मौन रहो

एक स्वप्न ही स्वर्ग, स्वर्ग पर
क्यों न मर्त्य का नाज रहे
अरे शाह-मुमताज ! विश्व में
क्यों न तुम्हारा ताज रहे

एक स्वप्न-सा—एक स्वर्ग-सा
बना रहे अनमोल पिया
तन-मन जीवन-मरण लगा मैं
रहूँ चुकाती मोल पिया

२

एक स्वप्न में 'शराबोर' मैं
वनवासिनि यामिनी-दुलारी
एक दृष्टि - उद्ग्रीव रहूँ
तपती ज्यों मानिनि शैल-कुमारी

कहीं किसी गिरि-तटी बीच
कुंजों की जहाँ घनी अँधियारी
'उड़ आ उड़ आ चन्द्रलोक में
भर ले छवि से अपनी क्यारी'

तारे गाते गीत जहाँ
गाता समीर दे-दे मृदु-ताली
"उठ-उठ अलसभरी मुग्धे
ले, आया वह तेरा वनमाली

जहाँ-कुमुदिनी मना रही हो
अपने प्राणों की दीवाली
पी समस्त जग की ज्वाला मैं
वहीं बैठ गाऊँ मतवाली

आज यह स्वर्ग-मर्त्य मिल जाये

जगती की साधना-शिला पर चन्द्रलोक बिछ जाये
आज यह स्वर्ग-मर्त्य मिल जाये

जग-ज्वाला का सिन्धु छानकर
नील-कंठ सा गरल पान कर
मैंने प्रीति-अमिय-कलसी उर्वशी-चन्द्र विकसाये
आज यह स्वर्ग-मर्त्य मिल जाये

जिसे युगों से उर में पाली
चमक उठी वह आज निराली
बन राका वह आज सुधा से वसुधा को नहलाये
आज यह स्वर्ग-मर्त्य मिल जाये

घर और बाहर

आज सखि ! प्राण बने वनवासी

जाने कौन प्यास यह—मैं निर्झरिणी, फिर भी प्यासी

आज सखि ! प्राण बने वनवासी

पीछे हरी-भरी खेती जीवन की

अपनी छोड़ चली हूँ

घर की ममता तोड़ आज

बाहर से नाता जोड़ चली हूँ

स्नेहसने कलधौत धाम की

छवि का दीपक फोड़ चली हूँ

और कहूँ क्या ? सुख की अपनी

दुनिया से मुँह मोड़ चली हूँ

छोड़ चले हैं परिधि बिंदु की प्राण सिंधु-अभिलाषी

आज सखि ! प्राण बने वनवासी

२

घर की ममता ! आह ! याद वह

कसक-भरी फिर क्यों जगती है

फिर सावन की इन्द्र-धनुष-छवि

क्यों निदाघ-नभ में उगती है ?

फिर आई वह याद कि जब मैं

झड़ी फूल-सी गिरि-उर-पुर में—

एक तरल संगीत-कड़ी-सी

धमकी विश्व-प्रकृति-नूपुर में

मैं आई, चिर - जड़ित पुरुष-
पाषाण हृदय में करुणा फूटी
वाराणसी बसी मरु में
जब मेरे उर की करुणा फूटी

शाश्वत जलता रुक्ष कलेवर
था वह वज्र - खंड बेगाना
धूमिल कर्म-गगन में जग के
था केवल मार्तण्ड पुराना

आई विभावरी - सी मैं
अंचल में शीतल सोम छिपाये
गिरि के रुक्ष - कठोर सभी
क्षण में छू मैंने मोम बनाये

शान्ति और विश्रान्ति मिली
गिरि को मेरी निमेष छाया में
मिला विराम कर्म से क्षणभर
मेरे अलकों की माया में

सुख - सुहाग का स्वर्ग
गिरस्तो की हरियाली में मनभाया
मेरे उर गुलजार चमन में
जग का विपुल वसन्त समाया

मरकत का वह रंगमहल
फूलों का झालरदार सलोना
केसर - कुंकुम - चर्चित कर्बुर
धातुराग का सुभग बिछौना

एक स्वप्न - सी बीत रही थीं
जीवन की घड़ियाँ सुकुमारी
बाहर की दुनिया जैसी हो
मेरी थी दुनिया वह न्यारी

थी न आह या चाह
न खलता था अभाव कोई संसारी
दूर शाप - छाया से थी
मेरी वह अलका की फुलवारी

अरे बंद कर स्मृति उस
बीते युग की स्वार्थ-प्रमाद-कहानी
निर्झरिणी न, आज रे
जग की वैतरणी मैं हूँ कल्याणी

आज न ये तृष्णा की अलका के सुख - सेज - विलासी
आज सखि ! प्राण बने वनवासी

३

आज विदा, ओ सुख-स्वप्नों की
मेरी अमरावती दुलारी
आज विदा, मेरे जीवन के
सावन की सुहाग - फुलवारी

आज उठी है इन्‌कलाब-सी
एक अजब की-सी चिनगारी
जल - भुन राख हुई जिसमें
तृष्णा-विलास की बस्ती सारी

घर को छोड़ चली मंदिर को
आज पुजारिन पिय-रँग-राती
तृषित खोजने चली वियोगिन
आज चातकी अपनी स्वाती

आज चमन से नहीं आज
झंखाड़-झाड़ से दूर नगर से—
आज स्फटिक सोपान नहीं
बस शूल-भरे अनजान डगर से

लगन लगी सखि! आज
प्राण ये जग के बंजर विजन-बटोही
विद्रोही सुख के, वन-वन के
बनजारे अविरत निर्मोही

एक सफर-भर आज जिन्दगी
आदि - अंत का नहीं ठिकाना
जग को धूप-छाँह की बंधुर
विकट घाटियों से है जाना

मग के मरु - मालव मंदिर-
मरघट-सब के परिचय की माया
करना वहन आज प्राणों में
मानव के सुख-दुख की छाया

ले कलसी अपने घर से
मैं आई हूँ जग के चौराहे
बाँट रही पीयूष, पिपासित
पी जाये जिसका जी चाहे

अरे देख ! निज आँगन मैंने
जो छोटो-सी वेलि लगाई
फूल-फैल वह निखिल विश्व के
घर-घर आज बनी अमराई

बढ़ी जा रही, मेरे अधरों
पर चुंबन - से गोल घनेरे—
गढ़े जा रहे मानव के
गुलजार-महल-प्रासाद - बसेरे

पथ कँकरीला रहे भले
वह घाट किंतु कितना मस्ताना
जहाँ देखती साँझ - सवेरे
झिलमिल दीपक-अर्घ्य जलाना

मंदिर की घंटा-ध्वनि में
मेरे जीवन का छल-छल गाना
मानव की समस्त चिर-संचित
पावनता का जहाँ खजाना

एक स्वर्ग रे यही साधना
का—शिव की तपभूमि पियारी
घर कैसे रह सके आह
युग युग से विरहिणि शैलकुमारी

आज बसेगी मेरे उर मानव की मथुरा - काशी
आज सखि ! प्राण बने वनवासी

वनफूल

मैं किसी की भूल, रे मन

फूल मत कहना पथिक ! मैं हूँ नियति की व्यंग्य-चितवन
मैं किसी की भूल, रे मन

१

फूल कह उकसा न मुझमें
रूप का अभिमान
मूल्य क्या रखते अरे
मेरे रुदन - मुस्कान

सीखने दे शून्य से
निज शून्यता का ज्ञान
आत्म-चिंतन असह रे
विस्मृति यहाँ कल्याण

तुच्छ मैं इस विजन-पथ की एक मुट्ठी धूल, रे मन
मैं किसी की भूल, रे मन

२

आत्म-चिंतन ! कसक रे
वह एक दंशन आह
चाह जाने कौन किसकी
उमड़ती बन दाह

सुमन हूँ अमरावती का
एक झाँकी-मुकुर
इन्द्रधनु-गुंफित तड़ित्‌मय
मेनका का चिकुर

यह कहाँ हूँ ? कौन हूँ
ओ ठहर हृदय-प्रवाह
अंध हम चलते विवश
शाश्वत नियति की राह

स्वप्न कहते फूल मेरा भाग्य किन्तु बबूल, रे मन
मैं किसी की भूल, रे मन

३

स्वप्न कहते-फूल होते सृष्टि का शृंगार
छवि बनी है प्रणय के भूखे हृदय का हार
रूप की जलती जवानी आरती-उपहार
फूल वह जो झूलता बन विश्व-वंदनवार
आह ! उठता एक हिय में हविश-पारावार
काश ! मुझको भी मिला होता किसी का प्यार

किंतु हंत ! दिगंत में बस एक हाहाकार
शून्य में टकरा प्रतिध्वनि सिसकती बेजार

रूप के अभिशाप-विह्वल मैं विरह का विपिन-क्रंदन
मैं किसी की भूल, रे मन

४

रूप का अभिशाप ले मैं कर रहा वनवास
चिर - परीक्षा में किसी की पंचवटी उदास
शून्य मेरी ! शून्य झुरमुट झाड़खंड-जवास
शून्य जीवन-यवनिका पर मृत्यु का परिहास

एक-सा निशि-दिन सदा पतझड़ यहाँ मधुमास
प्राण में झंझा, नयन बरसात बारह मास
खून का यह घूँट रे इन पँखड़ियों का लास
गंध तू कहता जिसे वह वेदना-उच्छ्वास

बेचकर मैं यह जवानी मोल लूँगा एक मधुवन
स्वप्न के अनुकूल, रे मन

एक मधुवन ! मखमली गिरि-तलहटी की ओर
मरकती छवि-सिन्धु तरलायित अनन्त अछोर
दूब की शय्या सलोनी; मलय की झकझोर
कुंकुमी केसर-पियालों की चतुर्दिक् दौर

रंगशाला छविमयी ! गुंजित दिगन्त अथोर
मुखर शिंजन वेणु की मंजीर-सी अलि-भौर
रास वासंती जहाँ रचती जहाँ कलमोर
नाचते छाया - निकुंजों में विहंग-किशोर

उड़ चलो रे प्राण! तितली-सो कहीं, उस ठौर
मैं बसूँगा मैं बनूँगा विश्व का चितचोर
एक क्षण तो देख लूँगा स्वप्न का संसार
आशियाना सजनि बुलबुल का चमन गुलजार

प्रीति के नगमे तराने रूप का बाजार
आप मिट बनना पुजारिन का प्रणय - उपहार
एक क्षण मैं विश्व की भर दूँ चँगेली रिक्त
एक क्षण यदि कर सकूँ प्रिय के चरण अभिषिक्त

सफल क्षण वह एक मेरा युग-युगान्त अनन्त
विधुर जग में रे! रचेगा अमर सृष्टि वसन्त

कल्प से मैं कर रहा उस एक क्षण का सृजन, रे मन
स्वप्न का संसार मेरा स्वप्न जीवन - मरण, रे मन

कवि की आशा

हिन्दी के अमर कलाकार प्रेमचन्द्र के निधन से अनुप्राणित

अभी याद है वह प्रभात जब मैं जीवन के तीर
आया, हिय मे स्वप्न लिये दृग में छवि की तसवीर
वरद पाणि थे उठे तुम्हारे कम्पित मेरा गात
फूट पड़ा जब प्राणों से वह अविरल गीत-प्रपात

कसक वह एक मीड़ अज्ञात
स्वप्न सा जग, स्वप्निल दिनरात
एक संगीत - सृष्टि अवदात
विश्व था एक फुल्ल जलजात

जब तुमने दे बीन मुझे यों कहा सगर्व पुकार—
'ओ तुम मेरी सृजन-कला के पूर्णबिन्दु साकार
देखो, वह जो बिछी सामने सृष्टि रेत विस्तार
वहाँ धूलि मे छिपी अहल्या-सी परियाँ सुकुमार
वहाँ चाहता कण-कण व्याकुल पारस-परस उदार
वहाँ खोजती वन-वन सुदरता वाणी का द्वार
वहाँ बद्ध नीरवता के हिमगिरि में सुरसरि-धार
अरे भगीरथ ! आज तुम्हारे हाथ विश्व-उद्धार

उठो कवि! मिला बीन के तार
बना दो सोने का संसार
मूक पङ्किल जग - सलिलागार
बनो कवि! मदिरभ्रमर-गुञ्जार

'हूँगा मैं भी वहीं खोज लेना रज-कण के बीच
पाओ मुझको प्यार करो जब समधिक हीरक-कीच
हमलोगों की आँख-मिचौनी यह अनन्त व्यापार
मैं न मिलूँगा तुम न थकोगे विरह-विधुर-उद्गार—

बनो कवि! युग की आर्त-पुकार
विश्व की सीता रे उस पार
स्वप्न का सेतु बना, सेमार
बाँध लो दुर्गम पारावार

जला दो स्वर्णिम कारागार
अरे तुम तो केसरी-कुमार
सँभल जाओ, गुरुतर छरभार
सृष्टि के तुम मेरे उपहार'

२

तब का वह प्रभात—जीवन का वह नीलाञ्चल तीर
बदल गये हैं देव! और यह बदल गई तस्वीर
धूप-छाँह की सरी आज तिरती यह तरी अधीर
आह! बिछी यह युग्म तटों पर सृष्टि बड़ी बेपीर

अरे विश्वपति! क्या तेरा भी कोई शासक और
बता, कौन इस सृजन-मञ्च का सूत्रधार सिरमौर!
अचल नाश-तरु-दल पर टलमल हाय! रहा है डोल—
तुहिन-विन्दु-सा अरे देव! यह जीवन-कण अनमोल

मृत्यु ही क्या जीवन का मोल
हन्त ! जग की ऐसी ही पोल
बोल तो अरे विश्वपति ! बोल

रचूँ कहाँ मधुमास जहाँ पतझड़ को हो न बतास
रचूँ कौन-सा फूल न जिसकी धूल बने इतिहास
कहाँ सजाऊँ अपना यह केसर-कुंकुम का लास
बने न जहाँ मलय प्राणों का हाय ! दग्ध उच्छ्वास

न हो मेरा यौवन - उल्लास
नियति का जहाँ व्यंग्य-परिहास
शून्य यह मृत्यु-नगर-आवास
शून्य रे अग-जग शून्याकाश

देव ! इस शून्य गहन के बीच
व्यर्थ रे स्वप्न-सृजन की आस
व्यर्थ कवि का यह गीत-प्रयास
व्यर्थ सब एक अव्यर्थ विनाश

यह विनाश का मंच चन्द्र झड़ जाते जहाँ अकाल
ग्रस लेता पूर्णिमा-प्रेम को राहु-केतु विकराल
जहाँ विश्व के अरमानों का छाया-विटप विशाल
क्षण में भस्मीभूत आह ! आशाओं का कङ्काल

मन्द क्षण में युग-ज्योति विशाल
क्रन्द - आशा अभिलाष-प्रवाल
आज भारती-विभव जय भाल—
'चन्द' बिन सूना शिव का भाल

यों उजड़ा जाता जग का मधुवन गुलशन गुलजार
हाय ! अंजुमन परियों का बन गया मजार-दयार
अमर प्रेम-सौदा देने आया जगती की हाट
किंतु उतार रहा हूँ जग को हाय ! मृत्यु के घाट

असह यह असह देव ! व्यापार
करूँ क्या लेकर यह मधु-धार
बीन यह झंकृन ये स्वर-तार
नाश का यदि न दिया प्रतिकार
दिया केवल अरण्य-चीत्कार
देव ! तब कवि-जीवन बेकार
अरे ! लौटा लो यह छरभार
विश्व को अपना यह उपहार !!

३

'अरे ! निराशा के खँडहर में दीप-हीन सुनसान
तिमिर-गर्भ में असमञ्जस के पड़े हुए नादान
उठो सँभालो बीन, विश्व को दो आशा के गान
समझ यामिनी में ही पलता जग का स्वर्ण-विहान
'अरे फूल ! तू क्या जाने माली का कौन विधान
अमर बनाता क्षण को तेरे साक्षी कर पवमान
ध्वनि ! तू कैसे जान सकेगी, क्षण गूँजी फिर मौन
सदियों से तेरी प्रतिध्वनियाँ बजा रहा है कौन
'रो न कुमुदिनी ! प्रेमचन्द्र का होता कभी न अन्त
तब ससीम अब फूल-फैल वह हुआ असीम अनंत'

रेत में रचकर सृष्टि - वसन्त
मृत्यु-जीवन का अरे न अंत
अन्त मानव का एक अनंत
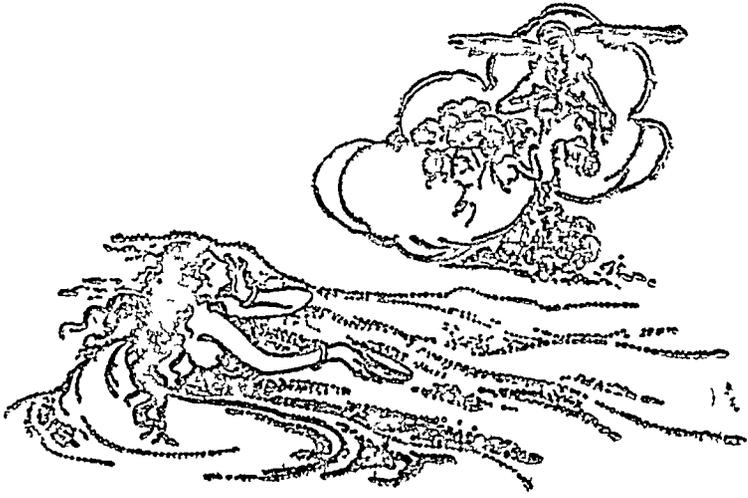
मरु

लगी थी कबसे तुझपर आशा

कैसा तू जलधर बजर मैं जब युगांत से प्यासा
लगी थी कबसे तुझपर आशा

बरस गये घन, बरस गई
वन के खरपातों में हरियाली
निखर गये मोती से धुल-धुल
शीशम - अम्ब-कदम्ब - तमाली

पर मेरे मन की मन ही में हाय ! रही अभिलाषा
लगी है तुझपर कैसी आशा।

उस रसवंती के आँगन में
फूल रही मकई मतवाली
घनीभूत तरलायित कुंतल
झूल रही कोदो छविशाली

इस सुहाग-चन्दनबाड़ी में
मेरी ही बस रीती प्याली
भूल गया है शकुन्तला-सा
मुझे हाय मेरा वनमाली

अभिशापित कर गया मुझे रे अहह ! कौन दुर्वासा
आह ! जीवन बस एक दुराशा

कबतक अरे और कबतक
जीवन मृगांबु-माया में डोले
पाले कबतक पंजर जर्जर
जिगर बगूले-भरे फफोले

वारिद वरद विश्व का तू
मैं कबतक यों वीरान रहूँगा
मन मसोस घनश्याम ! बोल
कबतक यों नियति-विधान सहूँगा

हे घन ! मुझ निर्धन का कब पलटेगा जीवन-पासा
लगी है युग-युगान्त से आशा
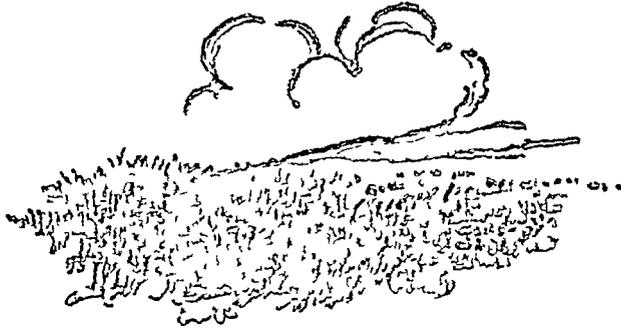
कटे खेत

'उजड़ा दयार या चमन कहूँ

ओ वसुन्धरे ! इस परिवर्त्तन को निधन कहूँ या सृजन कहूँ
उजड़ा दयार या चमन कहूँ

कल लोट-पोट थी हरियाली तेरे आँगन में लहराती
गेहूँ के गोरे गालों पर रूपसी तितलियाँ बल खातीं
छवि का नीलम संसार सघन सौरभ का वह बाजार नया
रे ! कहाँ शून्य इन खेतों से मधुवन का वह गुलजार गया

वह झौर-झौर मधुवौर-भरी सरसों मदमाती झूम रही
अब कहाँ बैंगनी पीली कुसुम-कली को, कोयल चूम रही
अब कहाँ बेल-बूटों-सी खेतों के कोरों पर इठलाती
साँवली सलोनी पुतली-सी अलसी विलसी पाँती-पाँती

लुट गया आह! वैभव-सुहाग लुट गई आज वह फुलवारी
श्रो भूमि ! कहाँ खोई तूने निज चिर-संचित निधियाँ सारी
सर्वत्र उदासी विजन प्रान्त मैदान हवा झन-झन करती
तेरे तरलायित अंचल में अब कहाँ उषा कुंकुम भरती'

'सुन्दर थी मैं ओ पथिक ! आज मेरी सुन्दरता बिखर गई
जग में सुन्दरता भरकर तो मेरी सुन्दरता निखर गई
मैं बनी अकिंचन आप और मुझसे गृह-गृह परिपूर हुआ
हूँ धन्य आज मेरा अंचल-धन जग-नयनों का नूर हुआ

फल थी सुहागिनी आज विश्व-हित हूँ तपस्विनी त्यागमयी
मेरी सरसों वह आज देव-मन्दिर का अमल चिराग हुई
बलि-बलि जाती तुझपर मेरे ओ ! कुसुमों की चन्दन-बाड़ी
जो रँग दी तूने कृषक-किशोरी की वह वासन्ती साड़ी

मेरे आँगन की हरियाली बन अमरलता फैली जग में
परित्राण बनी दे नव संबल थकितों को कटु जीवन-मग में
प्राणों के रस से सींच-सींच जो अंकुर मैंने पनपाये
श्रम सफल जगत् का आँगन यदि उनकी छाया से सरसाये

पल जीवन का बस ध्येय यही शाश्वत जग का उपकार करूँ
प्रति वर्ष दीन-मानव-मंदिर में नवल-नवल उपहार धरूँ
अर्चित तप के फल दे जग को मैं सिद्ध योगिनी-सी मन में
संतुष्ट ग्रीष्म-पचाग्नि बीच तपती रहती नित कण-कण में

फिर प्रेमवशी घनश्याम उमड़ जब सावन-भादों बरसाते
जग के कल्याण हेतु मेरे उर नये-नये अंकुर आते'

१

विपदा कैसे वह भूल गई

जानें कैसे इस घृणा-अवज्ञा के मरु में मैं फूल गइ
विपदा कैसे वह भूल गई

यह प्रथम पुलक, यह प्रथम ललक
उर में यह प्रथम उफान उठी
नस-नस में कुछ अँगड़ाई-सी
तरुणाई-सी अनजान उठी

तुम कौन दया की देवि! तुम्हारे
पाणि-परस से सिहर-सिहर—
युग-युग से सूखे अधरों पर
यह प्रथम-प्रथम मुसकान उठी

जानें कैसे खर-पातों में मोती की लड़ियाँ झूल गईं
विपदा कैसे वह भूल गई

२

दिन पलटे हैं मेरे ये रे
नादान हृदय ! समझो, सँभलो
दो दिन इस पूनो मे छवि के
जी-भर जीवन-यौवन सज लो

जानें किस पूर्व पुण्य के फल
नीरस में यह रस-धार बही
दो दिन—बस दो ही दिन तो रे
इस मरु को नदन-वन कर लो

यह दुनिया रे किसके हित दो दिन से ज्यादा अनुकूल हुई
विपदा कैसे वह भूल गई

३

यह दुनिया ! आह ! जहाँ जीवन
में दुख - ही - दुख मैंने जाना
मुझको न मिला साकी कोई
मुझको न मिला रे मयखाना

उर्वर से दूर तिरस्कृत बंजर
में सूनी कुटिया मेरी
मैं क्या जानूँ 'मालव' कैसा
जब मिला 'थार' यह वीराना

उस ओर पड़ोसिन के आँगन
कल उमड़ी थी बदरी काली
थी थिरक रही उन्मद मयूर-सो
धनखेतो की हरियाली

गीला कण-कण गीला तन-मन
वह बनी अदन-सा रम्य चमन
पर आह ! पास ही मेरा घर
सूना - सूखा खाली - खाली

अनुराग-भरी आँखों में रस-
कलसी ले कृषक-वधू आती
साड़ी का छोर उठा बच-बच
मुझसे वह दूर - दूर जाती

हा हंत ! उपेक्षा क्यों इतनी, मैं क्यों
अछूत यों त्याज्य हुई
मेरे हित सुधाभरी आँखें
क्यों हाय ! हलाहल बरसातीं

उस दिन न रुका बेताब जिगर
मैं बढ़ी ज़रा उस ओर सखी
वह अरहर जहाँ झकोर-भरी थी
खड़ी बनी चितचोर सखी

उस दिन से एक कगार उठी
प्रतिबंध लगा मैं बंद हुई
अपराध कहो था क्या मेरा
यह दुनिया बड़ी कठोर सखी

दे जन्म मुझे ऐसे जग में
विधि से सच भारी भूल हुई
विपदा वह कैसे भूल गई

ना भूल नहीं, मेरे जीवन
प्रभु की करुणा का अंत नहीं
जग में ऐसा पतझड़ न हुआ
जो मिटकर बना वसंत नहीं

सुखदे ! करुणा की देवि
शरत् ओ मंगल नवल दीपवाली
वरदे ! तेरी हो दुआ बनी
मुझ गरीबिनी घर दीवाली

'मैं तुच्छ' कहो कैसे मानव
जब मुझको भी अधिकार मिला
उर की चाँदनी बिछा कर दूँ
यह अमा पूर्णिमा छविशाली

यह धवल पर्व धुल युग-युग की
कालिमा आज निर्मूल हुई
विपदा सच रे सब भूल गई
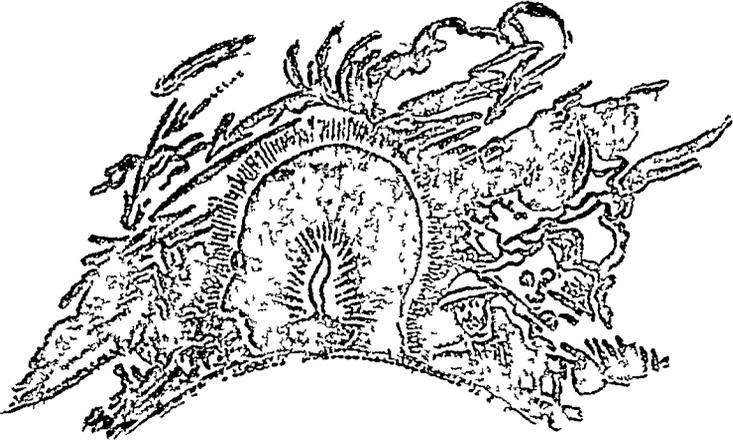
महात्मा गांधी

१

बीते सड़सठ बरस—अमर यह दीपक-लौ झिलमिल जलती है
छिपा न अंचल में माँ ! यह तो झंझा में खिल-खिल पड़ती है
पुर-पुर यौवन-फाग मचाना उर-उर नव अनुराग जगाना
युग-युग पुञ्जीभूत तिमिर-गृह में नव-युग की आग लगाना
कठिन कर्म है !—इसीलिये तो पल-पल यह तिल-तिल जलती है
बीते सड़सठ बरस—अमर यह दीपक-लौ झिलमिल जलती है

२

डगर अगम वह नगर दूर मन्दिर के खुले कपाट न होंगे
शिव कैसे कैलास चढ़ें यदि ज्योतित चन्द्र ललाट न होंगे
किन्तु देख वह मुक्ति शीश पर दीपक - लौ ले चढ़ी आ रही
पीछे बलिपंथी कतार पर फिर कतार—लो चढ़ी जा रही
कितना पथ है शेष कहाँ वह मन्दिर की ठकुरानी
मत घबरा, वह दीप अमर बस दीवट हुई पुरानी
वर्ष-वर्ष पर नवल स्नेह - संबल पा यह घुल-घुल जलती है
बीते सड़सठ बरस—अमर यह दीपक-लौ झिलमिल जलती है

सावन

सच कहता हूँ मैं एक अलौकिक
नूतन युग का धावन हूँ
तू तो पहचान रहा कवि ! मैं
तेरा मनभावन सावन हूँ

पर चेत जायें वे भीम भुजंगम
जो ढोते विष की झोली
है रँगी खून में मायूसों के
जिनके जीवन की चोली

जो उड़ा रहे बैठे - ठाले औ'
कलप रही जनता भोली
वंचक परस्वभोगी जग के
मूषक - वर्गों की वह टोली

कुछ गजब न वे बह जायें अगर
मैं उनका अन्तक प्लावन हूँ
पर तू तो जान रहा कवि ! मैं
तेरा मनभावन सावन हूँ

प्रनासो

जो जीर्ण-शीर्ण हैं पतनशील
उनसे इतना क्यों प्यार तुझे
जो ध्वस्त-पस्त हैं उन्हें अस्त
होने में क्यों इनकार तुझे

शिव तो शाश्वत क्या हुआ अगर
कच्ची मिट्टी की मढ़ी गिरी
ये कूल कटेंगे ही जब यौवन
की उफान में बढ़ी सरी

मैं सच कहता ममता न मुझे
ये तट-तरु चाहे ढहें-बहें
मैं सींच रहा बिरवा-गम क्या
जर्जर झंखाड़ रहें न रहें

उस तरफ व्यर्थ उस बढ़े ताल पर
यदि मेरी बिजली गिरती
इस तरफ देख कदली-कुंजों में
बदली मणि-मुक्ता भरती

मैं पूर्व पुरातन का न सखा
मैं नूतन की छवि पावन हूँ
पर तू तो जान रहा कवि ! मैं
तेरा मनभावन सावन हूँ

तू नाच, न हो भयभीत अरी
किन्नरी मयूरी ! पुलक - भरी
तिर चली देख उदयास्त-सरी में
यह मेरी रूपसी तरी

लाया हूँ मैं रस-कलस
सजाऊँगा अमराई रेतों में
नन्दन की सुरभि अदन की छवि
बरसाऊँगा धनखेतों में

पर धूमकेतु हूँ कुटिल भिन्नता
के उन अर्क-जवासों का
मैं प्रलयंकर-कर का पवि हूँ
समता के वधिक गवासों का

मैं सच कहता, भाते न मुझे
ये पगडंडी - पगार - टीले
वसुधा के विस्तृत वक्षस्थल में
दल-बन्दी की ये कीलें

मैं आज डुबो डालूँगा इस
विप्लव-जल में धरती सारी
जिससे कि बसे कल समतल में
मानव की सुख बस्ती न्यारी

सच कहता हूँ, मैं एक अलौकिक
नूतन युग का धावन हूँ
तू तो पहचान रहा कवि ! मैं
तेरा मनभावन सावन हूँ
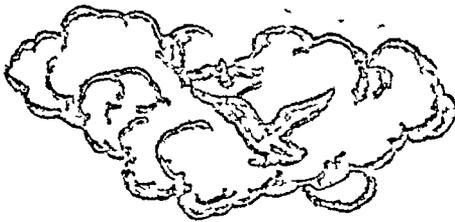
विश्व ! मेरे मोतियों को तोल ले
किंतु अपनी गाँठ प्रथम टटोल ले
एक नन्हा-सा हृदय ! पर रे कृपण
कौन ऐसी निधि इसे जो मोल ले

पागल-सा फिरता रूप-राशि
की प्यास लिये—मैं बनजारा
हो एक घूँट भी प्रचुर मुझे
अब तक न मिली वह मधु-धारा

कैसा मधुवन, कितना मधु यह
नादान कौन इनपर भूले
मैं तब समझूँ वह मधुप कि जो
उड़ नभ के फूलों पर झूले

पर आह ! चाह की राह कठिन
क्या जाने इसका अन्त कहीं
बढ़ती क्षण-क्षण अनुरक्ति
यहाँ पर तृप्ति मरण-पर्यन्त नहीं

भोली तितली-सा अपनापन
मैं हूँ कण-कण पर वार चुका
रे विश्व ! तुम्हारे छवि-पथ पर
मैं दुनिया दीन-बिसार चुका

अनुभूति

पर बाँध सके निस्सीम पंख
ऐसा तो नहीं दिगन्त यहाँ
क्या कहूँ हाय! मेरे कोकिल
हित पतझड़ बना वसन्त यहाँ

जीवन की उच्छृंखल गति में
किसका यह कठिन विधान यहाँ
क्यों रोक रहा रे दुर्वासा! प्रिय
शकुंतला का ध्यान यहाँ

यौवन की मधुराका में यह
किस नियति-राहु की छाप चढ़ी
क्यों अमित प्रणय के राज्य
आह रे पुण्य-पाप की माप चढ़ी

दुस्सह, दुस्सह जग में जीवन
ओ मतवाली मधुवनवाली
ले ढाल बना मदहोश मुझे
देती जा प्याली पर प्याली

दे विधि-निषेध का ध्यान न कर
परवाह न मीठा या तीखा
मैंने जग में अमृत-मंथन कर
आप गरल पीना सीखा

शिव कवि-जीवन, कैलास सुभग
स्वप्नों का यह गुलजार रहे
हँस दूँ तो हो अलका छवि की
रो दूँ तो गंगा-धार बहे
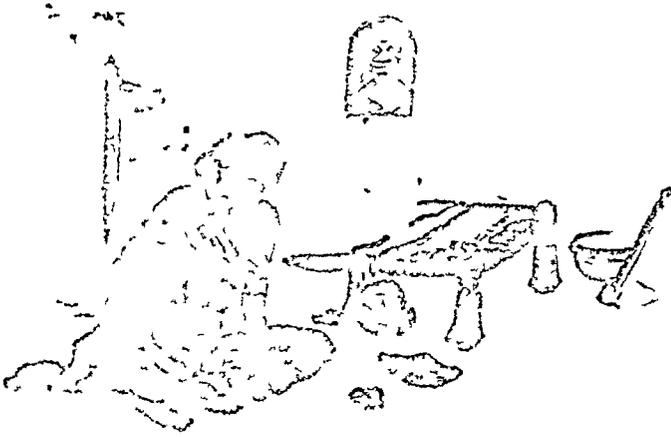
'वैशाली

मजदूरिन

पिया ! सुधि कैसे रहा बिसार
हाय ! यह फागुन बीत चला

ऋतु वसंत-छवि गृह-गृह छाई
फूल उठी सुरभित अमराई
गाँव-गाँव की कुटी-कुटी में
होती बिछुड़ों की पहुनाई

'आज प्यार का पर्व वियोगिनि'
कोयल यह संदेशा लाई
मेरी ही दुनिया सूनी क्यों
हूक - भरी बालम - सुधि आई

हिया होगा वह कुलिश-कठोर
आज भी आह ! न जो पिघला
पिया ! यह फागुन बीत चला

"पिया ! सुधि कैसे रहा बिसार हाय ! यह फागुन बीत चला"

मजदूरिन

पिया ! सुधि कैसे रहा बिसार
हाय ! यह फागुन बीत चला

ऋतु वसंत-छवि गृह-गृह छाई
फूल उठी सुरभित अमराई
गाँव-गाँव की कुटी-कुटी में
होती बिछुड़ों की पहुनाई

'आज प्यार का पर्व वियोगिनि'
कोयल यह संदेशा लाई
मेरी ही दुनिया सूनी क्यों
हूक - भरी बालम - सुधि आई

हिया होगा वह कुलिश-कठोर
आज भी आह ! न जो पिघला
पिया ! यह फागुन बीत चला

'मराली'

"पिया ! सुधि कैसे रहा बिसार हाय ! यह फागुन बीत चला"

मजदूरिन हूँ किंतु हृदय में
मेरे भी अनुराग - कहानी
गरीबनी हूँ पर मेरे सर भी
सिंदूर सुहाग - निशानी

भिखारनी हूँ किंतु अरी ओ
धनशालिनि मानिनि ठकुरानी
अपने राजा की दुनिया की
मैं भी एकछत्र हूँ रानी

तीज - पर्व कर मैंने जीवन में
बस एक मनौती मानी—
ऋतु वसंत पिय आ पहनायें
अपने हाथ चुनरिया धानी

किया मैंने कैसा अपराध
साध यह हाय, हुई विफला
पिया ! यह फागुन बीत चला

कितने दिन से आह, यही
मधुमास-आस ले मैं जीती हूँ
चुप-चुप जग की चहल-पहल से
दूर अश्रु गम के पीती हूँ

गोरैया-सी चुन-चुन खेतों से
दाने फल-फूल सलोने
अपने अवध - विहारी हित
शवरी-सी लाती भर-भर दोने

जुटा सकी थी किन यत्नों से
तेल नई सरसों का थोड़ा
रुपये भर का घी पैसे-पैसे
था जिसे महीनों जोड़ा

पड़ी वहाँ वह कितनी साध
उमंगों को लेकर चरपाई
कितने दिन ठाकुर के घर की
जिसके हित सरतोड़ कमाई

साक्षी है आँगन का वह
तुलसी-बिरवा प्राणों का प्यारा
चबूतरा जिसका पुनीत गोबर
से मैंने नित्य सँवारा

कितने कातिक और माघ
गंगा-जल जिस पर समुद चढ़ाया
कितने दिन रे, तपस्विनी-सी
मैंने दीपक अर्घ्य जलाया

प्रेम नहीं मेरा गरीब
मजदूरिन में कितनी मधुराई—
जान रहा यह हृदय और कुछ
जान रही हैं गंगा-माई

किया व्रत कौन न मैंने ? किंतु
विफल सब, एक न हाय फला
पिया ! यह फागुन बीत चला

कैसा है वह देश पिया
परदेशी मेरे जरा बताना !
वहाँ न क्या वसंत की मस्ती
वहाँ न क्या फागुन दीवाना

मिल दुर्दान्त, आह ! जिसमें पिसता
गेहूँ - जौ नाज - खजाना
पीस उसीने क्या वसंत को
बना दिया वह जग वीराना

अरे लौट आ मेरे परदेशी
अपने इस दीन भवन में
अरे लौट आ मेरे वनमाली
इस कलित करील-विपिन में

आज नहीं मजदूर, आज
राजा मेरे, मैं तेरी रानी
वर्ष - पर्व है पिया, आज
कुछ कह-सुन ले अपनी मनमानी

आज सुधि कैसे रहा बिसार
पिया ! यह फागुन बीत चला

मुकुलिता

फिर बनी कोरकवती

फिर जरा को जीत संपुट ले रही मधु-मालती
फिर बनी कोरकवती

रूप-रेखा-हीन केवल नीलिमा-विस्तार में
ढल रही है पल रही है विश्व-पारावार में
यह अमिय-कलसी प्रणय की उर्वशी यह छविमती
फिर बनी कोरकवती

बन्द इस मकरन्द-गृह में रूप की यह इंदिरा
रच रही है एक केसर कनक-कल्प वसुंधरा
मर्त्य से छिप-छिप उभरती आ रही अमरावती
फिर बनी कोरकवती

स्वामिनी चौदह रतन की यह सलोनी नागरी
लाज का घूँघट छिपाये निखिल भाग-सुहाग री
फिर मथेंगे इस उदधि-छवि को भ्रमर वे मधुव्रती
फिर बनी कोरकवती

आज फिर मधु-घट लिये तू, विश्व-मोहिनि लासिका,
बन रही है देव-दानव मानवों की शासिका
क्षणिक तू कैसे, सती कल आज मुग्धा पार्वती
फिर बनी कोरकवती

नव वर्ष मनाने मैं आई
मधु-पर्व मनाने मैं आई

नन्दन - वन की केसर-कलसी
भर चंचु-कोष में अलका-श्री
जड़ शिशिर-शयित तंद्रिल जग में

मधु - प्रात बुलाने मैं आई
नव वर्ष मनाने मैं आई

ले नव उमंग परिमल - प्याली
कुड्मल दल वृंत - कुंत डाली
जगती के जरा-जीर्ण तन में—

यौवन बरसाने मैं आई
मधु - पर्व मनाने मैं आई

गीत

वन-वन अलि-अलि मद्कल-गुंजन
तृण - तृण दिगंत नूपुर - शिंजन
पग-ध्वनि से प्रकृति-उर्वशी को

स्वर - ताल सिखाने मैं आई
नव वर्ष मनाने मैं आई

परिधान सजा मखमल धानी
मरकत पर पन्ने का पानी
कंचुकी कली कुंकुम - सानी
चिर-विधुर वनाली आली का—

श्रृंगार सजाने मैं आई
मधु - पर्व मनाने मैं आई

भर पर्ण - पर्ण नूतन लाली
अनुभूति भूति की नव थाली
दे गया पुरातन रे माली
उठ सजा नवल मधुवन भविष्य का—

पथ दरसाने मैं आई
मधु - पर्व मनाने मैं आई
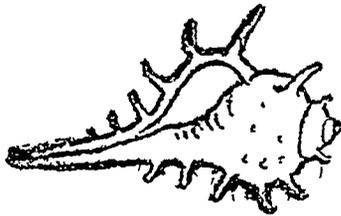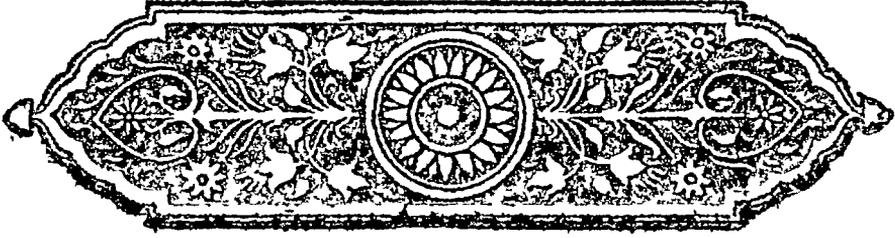
गीत

प्राण ! पारावार हो जा

आज पी छवि शारदी
कोमल तुहिन-सुकुमार हो जा
विश्व - शतदल पर ढुलककर
मोतियों का हार हो जा

प्राण ! पारावार हो जा

अलस-यौवन ऋतुमती प्रिय
वसुमती-सौभाग्य की—
पूर्णिमा में गगन-चुम्बी
प्रणय सैन्धव ज्वार हो जा

प्राण ! पारावार हो जा

पीर भी सौरभ-सनी हो
यामिनी-गन्धा परस—
पुलक-मंथर सन्दली
बेजार नैश बयार हो जा

प्राण ! पारावार हो जा

आज कण-कण हास वन-वन
लास काश-हुलास में
विधुर ! अपनी कालिमा तज
धवल एकाकार हो जा

सो शरत् में, स्वप्न की
राका बड़ी यह छविमती
किन्तु जग ओ प्राण-पिक
मोहन वसन्त पुकार हो जा

प्राण ! पारावार हो जा
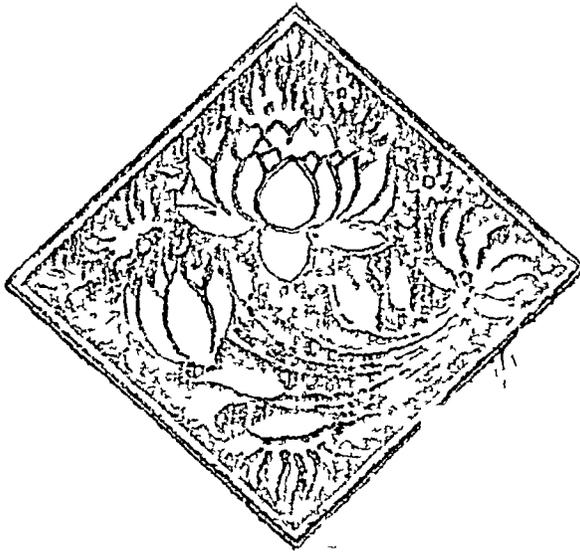
वृन्दावन से

१

सदियों का परदा उठा आज
फिर वह छवि-दुनिया आई है
वह दुनिया तेरे प्राणों की
कवि ! जिसका तू शैदाई है

मेरी कल्पना पुकार उठी
नव अरुणचूड़ खग - सी बेकल
री वृन्दा ! जाग तिहारे घर
मोहन की आज अवाई है

वह दुनिया लौटी आज कहाँ
कोई अतीत की खाई है
मेरे अतीत ! बस तुही सत्य
यह जग तेरी परिछाई है

मेरी कल्पना-विहंगिनि के
स्वप्नों की तू मधुमास प्रिये
ओ वृन्दा ! जाग तिहारे घर
लौटा फिर कुँवर-कन्हाई है

लौटा यह ज्योति एशिया की
भारत की अमर जवानी बन
युग की वियोगिनी राधा की
लौटा वह प्रणय-कहानी बन

लौटा वह तेजवन्त पौरुष
वह कुरुक्षेत्र का कर्मवीर
माँ यशुमति का चन्दा लौटा
तेरे घर फिर, ओ वृन्दावन

२

मैं सुनता हूँ, वह टेर रहा
अपनी वंशी धीरे-धीरे
वह मादन-मदन बिखेर रहा
कुञ्जे-कुञ्जे यमुना-तीरे

पी जिसे मत्त खग मृग
तमाल-ताली हरियाली में डूबी
ओ मानव ! तू भी गीतामृत
वह बूँद-बूँद पी रे पी रे

मैं देख रहा, नन्दन उमड़ा
वृन्दा ! तेरी तरु-छाँही में
नारी का अभिनन्दन-बन्दन
राधा-माधव गलबाँही में

मैं देख रहा करील के
झुरमुट-झाड़ खंड कांतारों में
भारत का बाल-गुपाल
खेलता है गोकुल-चरवाही में

मैं देख रहा, वृन्दा ! फिर से
तू त्रिभुवन की शासिका बनी
पृथ्वी पर अमरावती और
अलका की तू नासिका बनी

नटवर बन उतरा गोपवेश
वह हृषीकेश तेरे आँगन
रुकता कैसे वह जब तेरी
राधा-ललिता लासिका बनी

वह खड़ी दुपहरी-देख रहा
मैं-मधुवन-बीच तमाल-तले
सब गोपी-ग्वाल गुपाल संग ले
आज कलेवा-काल मिले

ओ बड़भागिन वृन्दा ! तेरा
कैसा वह दूध, दही, माखन
जो स्वर्ग-सुधा को भूल
आज वसुधा में गये गुपाल छले

३

है आज अष्टमी भाद्रपदी
तन-मन में मेरे सुधि आई
कैसे आओगे, नाथ ! गहन
क्षिति - नभ में अँधियाली छाई

पर मेरे प्राण पुकार रहे
छिप जाओ नभ के शशि-उडुगण
इस गहन अमा में पृथ्वी पर
है अमर ज्योति की पहुनाई
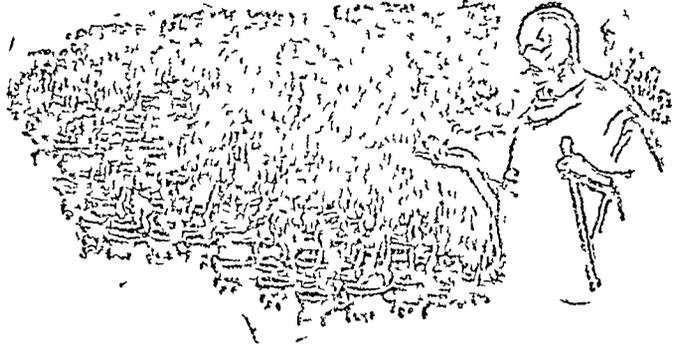
मिट्टी के दिये

कंचन-तन बन निखरे-निखरे

जल रहे आज अड़तीस कोटि मिट्टी के दिये सनेह-भरे
कंचन-तन बन निखरे-निखरे

किस प्रेम-पुजारी के प्राणों
कुछ ऐसी है चिनगारी - सी
छू जिससे मिट्टी के पुतले
बनते आरती सँवारी - सी

किसके इंगित पर जगा आज
भारत का सुप्त भाग्य - तारा
यह कौन धरातल पर उदयाचल
जिससे फूट ज्योति-धारा-
छा गई हिंद-सागर तट से उत्तर हिमगिरि-शिखरे-शिखरे
कंचन-तन बन निखरे-निखरे

'मराली'

मिट्टी के दिये सनेह - पिये
शीतल ज्वाला की शिखा लिये
'हमसे न जले कोई हम जल-जल
दें प्रकाश'—यह हौंस हिये

ये देख चुके आँधीवाली
बिजली - पिशाचिनी की माया
ये देख चुके बारूद - गैस से
कंपित यूरप की काया

ये देख चुके बुझ गया
प्रतीची में मानवपन का चिराग
सूली पर टँगा दानवों की है
उसकी 'मरियम' का सुहाग

जल रहे दीप अम्लान किंतु ये
यद्यपि चतुर्दिक् तम छाया
इसलिये कि इनपर प्रभु की फैली
करुणा की अंचल - छाया

इसलिये कि इनको मुक्ति-पुजारी
का यह है पावन निदेश
'तुम दो प्रकाश मत देखो
यह प्यारा स्वदेश है या विदेश'

मिट्टी के दिये ! आज प्राची के
ये सुहाग - सिंदूर बने
जग प्रेम-ज्योति हित ये अनन्त
श्रीमन्त नयन शशि - सूर बने

संवारने

तुम जलो मुक्ति की आग
हिंद के गाँव-गाँव खेरे-खेरे
ओ सत्य-पुजारी ! चिनगारियाँ
तुम्हारे चहुँ दिशि में बिखरें

ओ मुक्ति-मशाल ! बढ़ो आगे
पीछे यह दीपावली चली
देखो स्वागत के लिये हिन्द की
सुख - सपति - कमला निकली

देवता ! तुम्हीं ने इस सोई—
मिट्टी में नवल प्राण प्रेरे
जल रहे आज अड़तीस कोटि
मिट्टी के दिये उमग - भरे

कंचन-तन वन निखरे-निखरे
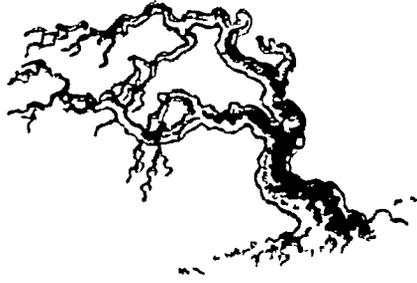
सूखा पेड़

मेरी बेहोश घड़ियों के साथी उस पेड की स्मृति में

प्रिय पादप ! सुन्दर उपवन में था न तुम्हारा कोई सानी
हरे-भरे थे सौम्यमूर्त्ति ! सहृदय शीतल छाया के दानी
कितु हाय ! अवलोक आज तुमपर निष्ठुर विधि की मनमानी
रो देता है हृदय बरसता आँखों से करुणा का पानी
पतनोन्मुख ककाल-मात्र अवशिष्ट तुम्हारी दुखद - निशानी
सुना रही जग को उन्नत जीवन को अन्तिम करुण - कहानी

× × × ×

उजड़े - से मैदान मध्य एकान्त प्रकृति की रम्य कुटी-सी
शीतल शान्तिमयी छाया है, जनक-लली की पचवटी-सी
कहाँ ! आह ! अब, कितनी ऊष्मा शीतमयी ऋतुओं की मारी
नित्य नवीन पीन हँसतीं छतनार डालियाँ प्यारी - प्यारी

वे पल्लव सुकुमार श्याम भौंरे - से छोटे-बडे सलौने
विहग बालिके ! कहाँ तिहारे बचपन के प्रिय मंजु खिलौने
भूली सी रवि-रश्मि बाल पाकरके मजु प्रवाल-बिछौना
ठहर तनिक अँगड़ाई लेती रचती चित्र - विचित्र सलौना

मित्रानी

किन्तु निरंकुश देव ! न होगा यहाँ कभी वह स्वर्ण-सवेरा
आ वसन्त ! जा भूल समय वह, व्यर्थ यहाँ अब तेरा डेरा
यहीं हरित शाखा पर तेरी ही बैठे ऋतु - पति की रानी
पंचम स्वर में कलित काकली से करती प्रिय की अगवानी

अलसाया-सा सांध्य अनिल अन्तिम मर्मर-ध्वनि कर सोता था
यहीं सदा चिरविरही एक पपीहा 'पी' 'पा' कह रोता था
प्रात - वियोग प्रदोष - मिलन पक्षी द्वय का सदैव होता था
यहीं सदा परिक्रान्त बटोही तनिक बैठ पथ-श्रम खोता था

यहीं पास की बस्ती के आतप-आकुल कृषकों की टोली
आकर ग्रीष्म दुरन्त-दुपहरी में गाती रागिनियाँ भोली
हुआ पराया, किन्तु आज वह खग-समाज जो था कल अपना
हुआ हाय ! क्रीड़ा-कलाप वह कृषकों को भूला-सा सपना

कृषक छोकरी वह मराल-छौनो-सी नवपरिणीता बाला
गूँथा करती जो बचपन में यहीं सदा पत्तों की माला
यहीं झूलने वह 'सावन' में झूला ललक - भरी आवेगी
देख तुम्हें यों सखे ! हाय ! कितना दुख वह बच्ची पावेगी

पत्ता-पत्ता जिसे विटप ! बचपन में प्यारा रहा तुम्हारा
क्यों न तुम्हारी स्मृति में उसके बहा करे आँसू की धारा

× × × ×

मन मसोस बूढ़े कहते—झंखाड़ खड़ा है ! कल का पौदा
मूढ़ जगत् अनित्य नश्वर है, ज्यों बच्चों का क्षणिक घरौंदा
कवि कहता—कविते ! गाओ-गाओ सुयशी की सुयश-कहानी
अमर रहेगी विटप ! तुम्हारी नश्वर जग में कीर्त्ति-निशानी

[मेरी सबसे पुरानी रचना]

मानूँ कैसे मैं हारा

सुन ले कह लूँ दो शब्द विदा के ओ विनाश की धारा
मानूँ कैसे मैं हारा

जीवन की अमर चुनौती ले मेरी तुझसे थी होड़ लगी
मृत्युञ्जय मेरी अमराई प्रत्यक्ष मरण के क्रोड़ उगी
वह खेल मरण - जीवन का रे मैं विहँस - विहँस खेलता रहा
सम्मुख गर्वित वक्षस्थल पर तेरे प्रहार झेलता रहा
तू क्षण - क्षण काट रही मुझको मैं इंच - इंच बढ़ता जाता
तेरा अंतक प्रवाह भी तो मेरी जड़ सींच - सींच जाता
जीवन की कैसी जीत! नियति के कंधे पर आसीन हुआ
कुछ क्षणभर नहीं! एक युग तक छतनार सौम्यरस-पीन हुआ
मैं खड़ा विश्वपति के आँगन फैला चहुँदिशि अपनी बाँहें
था बना सदन शीतल उनका घर की जिनकी भूली राहें
कुछ क्षणभर नहीं! एक युग तक मधुवन यह पुलिन-दिगंत बना
मेरे सैकत - पुर में दुरंत वह ग्रीष्म अनंत वसंत बना
मैं जान रहा—थी यत्नशील वह कुटिल नियति भीतर - भीतर
मैं हरा - भरा था क्योंकि एक संसार बसा मेरे ऊपर
फिर आज विदा के दिन भी मैं कहता यह मेरी हार नहीं
क्या मरण? नहीं परिवर्त्तन भर! हूँगा कल मैं उस पार कहीं

मुझको प्रतीति यह वर्द्धमान जीवन का अमर किनारा
तब क्यों कहता मैं हारा

—रेणु—

मनमानी किसी मंथरा की मैं दारुण एक कहानी हूँ
साकेत-वासिनी रही कभी अब पचवटी की रानी हूँ
जब गौरव-गिरि के सिर-किरीट बन हीरा-सी मैं जड़ी रही
अब किरणों के पथ अमरों की हमशीरा-सी मैं खड़ी रही
जब रत्न-पीठिका शिव की त्रिभुवन की साधना-शिला थी मैं
उस समय अरी भोली जगती! तू तो बेसुध-सी पड़ी रही

युग-युग पहले जब प्रथम प्रात मेरे उदयाचल पर उतरा
जीवन की नव-अनुभूति-भूति का कुंकुम कण-कण में बिखरा
रे वृद्ध विश्व! रे जरठ जीव! कुछ तो बचपन की बात बता—
उस समय तिहारे आँगन में किसका मुझ-सा सुहाग बिखरा
अभिशप्त अप्सरी-सी गौरव-गिरि से झड़कर मैं रेणु हुई
हूँ आज बाँस की नली कभी थी जो मोहन की वेणु हुई

तूफान उठा, उत्तुंग शिखर से उड़ मैं तलहट में आई
वन-वन मारी फिरनेवाली छेरी री! मैं सुरधेनु हुई
जो उजड़ गई अलका छवि की उसको मैं एक निशानी हूँ
मनमानी किसी मंथरा की मैं दुख की एक कहानी हूँ

तू गौरव-गिरि मैं रेणु आज तू उन्नत मैं घाटी गहरी
पूरब - पश्चिम दो शृंग उठे मैं बीच मलिन सुनसान दरी
जीवन का यह इतिहास-ह्रास! पर इतना है संतोष मुझे
भूपतिता हूँ तो क्या फिर भी अलका की मैं मेनका-परी

मेरे देखते उठे कितने ये गर्वगोत्र ये चित्रकूट
फिर जलीं स्वर्णपुरियाँ कितनी लुट गये अरे कितने त्रिकूट
तू अभ्रंकष सुन रहा विश्व की कथा—सुना यह भी भोले
किस विषम व्यथा से तड़प रहा तेरा उर-निर्झर फूट-फूट

दिल से दिमाग का मेल! आह यह पिछले युग की बात हुई
जो प्राप्य सुधा थी यहीं आज वह अमरों की सौगात हुई
रे वृद्ध विश्व! रे जरठ जीव! कुछ तो बचपन की बात बता—
मेरा कैसा था प्रात! और यह कैसी भीषण रात हुई

मैं उड़नेवाली रेणु एक ही झोंके की बस है देरी
मैं देख रही सीधा पथ जहाँ लगी किरणों की है फेरी
जल-थल-अंबर में देख रही मैं अपनी प्रभुता का प्रसार
'उड़ जा, उड़ जा' सर्वत्र किसी ने मधुर भैरवी है टेरी

यह अंतिम प्रहर निशा का—फिर मैं उषादीप नूरानी हूँ
क्षण अग्नि - परीक्षा! फिर तो मैं साकेत-पुरी की रानी हूँ

मन की बात

अरी ओ मेरी जीवन-सरी
तू कब होगी सुंदर से बढ़कर त्रिभुवन - श्रेयस्करी
अरी ओ मेरी जीवन-सरी

जग - मरु में चंदन की लकीर-सी स्वप्नों में भूली-भूली
रहती तू अपनी छवि की उमड़-घुमड़ में यों फूली-फूली
पर री छिछली ! तुझमें न भरी जग की छूँछी-गगरी

अरी ओ मेरी जीवन-सरी

तू देख अरी वह निर्झरिणी ! चट्टान-शिला से टकराती
वह रसवंती सुकुमार ! चंडिका-सी पवि-पाहन दहलाती
आती है तोड़-फोड़ कारा का रुद्ध द्वार मृदु कलावती
दुर्दिन में जो दुर्गा न बने वह क्या शिव की पार्वती-सती
जग तृषावंत तू मधु अनंत कर सार्थक री अपनी काया
तू सुधाधार यों सुधा न हो केवल मोहक मृगांबु-माया
तू मुक्त शरद प्रसन्न बन करुणा वरुणा-सी प्रशांत गहरी
शुचिता गंगा की, भीषणता वैतरणी की तू ले वह री
सुख-दुख के दोनों कूल बँधी तू विश्व-वेदना सह री

अरी ओ मेरी जीवन-सरी

'मराली'
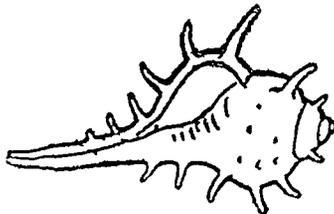
तू जल दीपक की बाती !

पढ़ रही पुजारिन सपने में निज अलख पिया की पाती

पुजारिन
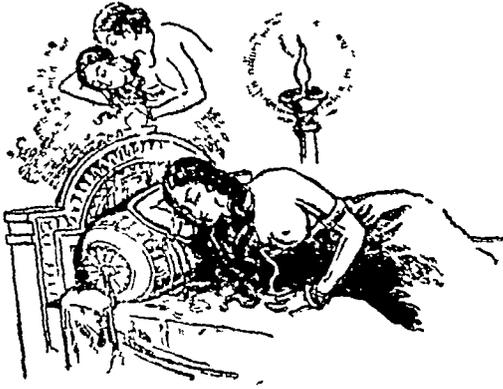
तू जल दीपक की बाती

पढ़ रही पुजारिन सपने में निज अलख पिया की पाती
तू जल दीपक की बाती

कब पलक लगी कब मुँदीं अरे-ये खुली अधखुली आँखें
कब मुड़ीं न उड़ीं डगर पिय की इस विहगिनी की पाँखें
यह कठिन माघ की रैन चैन से दो क्षण सो ले सजनी
तू बिता चुकी है तीन पहर अविदित गतयामा रजनी

लो ! पहुँच गई यह उषा भाल पर लिये शुक्र की बिंदी
भींगे गुलाल से गाल नयन-पुट में रतनार उनींदी-
चुन-चुन तारक-दल फूल गगन मधुवन की डाली-डाली
अंबर की अमर पुजारिन यह सजती पूजा की थाली

वह अंध एक निर्जीव पिंड तू उसे सुहागिन ! छू री
तब होगा जग में छवि-विहान दिनमान शोण सिन्दूरी
अंबर में उषा मर्त्य-मन्दिर में जगी भक्ति-रस बोरी—
वह देख मानवी भोरी एक किशोरी

सन-सन बहता प्रातः-समीर क्यों तीर लगें इस तन में
क्या माघ-शीत क्या छाँह-घाम जब राम रमा इस मन में
सुकुमार उँगलियाँ तुरत उगे जौ के अंकुर-सी गोरी
है लटक रही लुटिया जिनमें चुभ रही मूँज की डोरी

फूलों-सा पग—शूलों का मग गंगा - कछार की रेती—
झाऊ-बबूल का विपिन बना इसके जीवन की खेती
काया है कारा बनी साधना की जंजीर पुरानी
झाँकती दृगों से सिसक-सिसक इसकी वैरिणी जवानी

निर्लिप्त शरद-नभ से तन पर खद्दर की उजली सारी
जिसपर त्रिभुवनपति वरद राम की नामावली किनारी

यह निवेदिता किस अलख-चरण-सेवा को एक भिखारिन
किस शिव की चाह-भरी पृथ्वी की यह पार्वती पुजारिन
यह कौन विधुर राधा ? पुकारता इसको कौन कन्हैया
व्याकुल अधीर दिलगीर यथा नवजात वत्स-हित गैया

लपकी जाती गंगा - कछार से सुधबुध भूली-भूली
यह मीरा थिरक रही पथ में चढ़ कुश-कंटक की सूली
है एक हाथ लुटिया जल की दूसरे अर्चना-थाली
यह स्वयं प्रार्थना-सी पवित्र आरती-शिखा छविशाली

पत्थर में राम खड़ी सम्मुख यह आज अहल्याबाला
इस कलि में हुआ तरण-तारण का यह कुछ ढंग निराला
छू शापनाशिनी ओ तपस्विनी प्रतिमा की शैदाई
तू शुद्ध बुद्ध उठ बोल अरे तुझको हे राम ! दुहाई
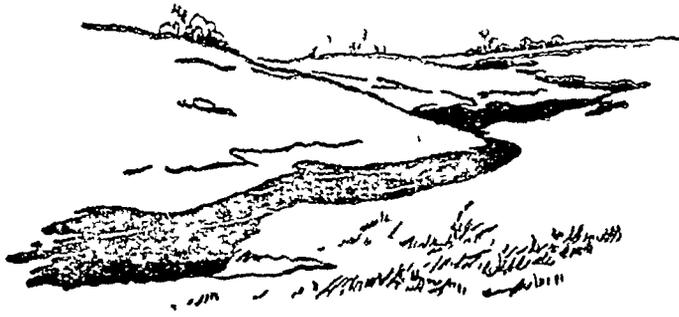
सरिता-संगीत

अचल की नीरव रम्य तटी

नहीं भूलती सखि ! अलका की वह श्यामल तलहटी
मधुर बचपन की गति अटपटी
अचल की नीरव रम्य तटी

गिरि के नभ-चुम्बी रजत-महल की थी मैं रानी मतवाली
अपने सुहाग की अमर सेज पर टल-मल-कल करनेवाली
मैं सरस-परस से उगा चुकी हूँ गिरि-उर लतिका-रोमाली
मैं मानवती मेनका-करों की लुढ़की हुई सुरा-प्याली

छा गई विजन मरु में वसन्त की प्यारी-न्यारी हरियाली
उतरी बिखेरती मादन-मदन परी सी जब देती ताली
निज केलि-भवन में छाई रहती जहाँ अमा की अँधियाली
जीवन-कण से फूलों के दीप जला करती मैं दीवाली

चढ़-बढ़ मेरे युग अधरों पर गुदगुदी मचाने की ठानी
वह बचपन की नटखटी दूब करती थी मुझसे मनमानी
पथ में मेरे वानीर-कुंज ने थी नीलम-चादर तानी
झकझोर उसे देती मरोड़ क्या कहूँ आह! वह नादानी

वह प्रणय-कला में पट प्रियंगु झुक-झुक जब फैलाता डलियाँ
मैं झटिति सरक जाती, फिर आती, फिर होती बहु छलबलियाँ
तरलायित मेरे अलकों में गिरि-मल्ली आकर गुँथ जाती
यूथिका उनींदे बच्चों को निशि मेरी गोद सुला जाती

जब मेरी नीहारिका सौत सित साड़ी मुझको पहनाती
क्या जाने क्यों अलसाई-सी कसमस में पड़ मैं थक जाती
यदि कभी किसी विधि ऊषा रंगिणी मेरे अंतःपुर आती
गालों पर मेरे कुंकुम से कुछ इन्द्रधनुहियाँ गढ़ जाती

ऐसे तो स्फटिक-शिला पर भी मैं खूब उछलती मनमानी
पर धातुराग को देख न भाता मुझको अपना रँग धानी
क्या कहूँ कथा उस निशि वियोगिनी चकई की विपदा भारी
कितना समीप, फिर भी अप्राप्य यह अजब प्रेम-दुनिया न्यारी

उस समय सुहाती मुझे न सखि! चन्द्रिके! तुम्हारी धवल कला
कोई मूर्च्छित हो हृदय-घाव से हँसना क्या उस समय भला
हँसना-रोना पा समय कह गई थी मुझसे यों प्रकृति नटी—
अचल की नीरव रम्य तटी

अपने कवि से

चुन लो मोती मानस के मेरे
ओ मंजुल कलहंस सखे
यह जीवन रैन अँधेरी तुम
श्रीमंत नखत - अवतंस सखे

प्राणों के प्याले में सुख की
दुख की जो भरी गरल-हाला
तुम उसमें एक तरंग लिये हो
बुद - बुदमयी फेन - माला

साकी ! तुम विन है मोल कौन
यह मिट्टी का प्याला रीता
कोरे कागज का तन कैसे
बनता यह रामायण - गीता

मेरी पार्थिव लाचारी के तुम
वियति - विहारी पंख सखे
प्रभु के मुक्त प्रेम-पुजारी के तुम
शुचि ॐकारी शंख सखे

तुम उड़ो कनक-पंछी मेरे
इस गहन कुहासे से ऊपर
सो रहे निराशा में अधीर
कितने ये प्रात-विहग भू पर

कुहरा न प्रात का पथ सँवरा
यह वही धूल नभ को घेरे
तुम वह खग बनो कुहासे में
जो नव प्रभात हेरे-टेरे

उमड़ी यह गोल-गोल आँधी
कंपित हैं नगर-गाँव-खेरे
इस विश्व-विटप के जीर्ण-शीर्ण
उड़ रहे पत्र पियरे-पियरे

उड़ रही छिपी इसके स्वर में
नव बीजों की बदली कजली
तुम जान रहे कटने पर भी
फलती है संसृति की कदली

तुम क्यों उदास मेरे माली
लू कौन न जिसमें नमी हुई
इस जग के आल-बाल में कब
नव-नव प्रवाल की कमी हुई

प्रभु की करुणा में अचल भक्ति-सी
क्षिति में छाँह-उछाह भरी
जो ग्रीष्म दुरत ज्वलंत अग्नि की
सेज चढ़ी भी हरी-भरी

रे ! बनो तपस्विनि दूबों को तुम
शीतल सुन्दर शाख सखे
बन जग की संस्कृति-शकुंतला को
ढँकनेवाली पाँख सखे

कल जिनका तुंग गरूर-शृंग
नभ को लज्जित करते देखा
प्रभुता की स्वर्ण-तरी पर चढ़
उदयास्त जिन्हें तिरते देखा

जब गिरी गाज सुध-बुध उन
'नीरो-जारों' को खोते देखा
सच कहो परंतु कभी फूलों को
भी तुमने रोते देखा

जब खड़ी विश्वपति के आँगन
यह प्रकृति-उर्वशी-सी दासी
बर्बर कर सकते ध्वस्त कभी
यह मानव की मथुरा-काशी

तुमको निर्देश उस चिर सुन्दर का
गुंजित करो—दिगंत सखे
तुम कोकिल अमर—
अमर यह प्रभु का
पावन सृष्टि-वसंत सखे

रामी

दुर्लभ है जग प्यार—प्यार है यहाँ मेघ-छाया रामी
क्षणिक चमकती ओस बूँद-सी यहाँ मोह-माया रामी
युग-युग कुहुक कहाँ कोयल ने चिर-वसंत पाया रामी
बुलबुल ने हिय चाहों को आहों में झुलसाया रामी

भाग्यवती थी, तूने वह अनमोल रतन पाया अभिराम
सच्चा मानव-प्रेम यही तो वसुधा में है स्वर्ग-ललाम

सुंदर थी तू दीवाना वह था सौंदर्य-पुजारी
अमिय-कलस थी तू प्यासा मूर्च्छित वह एक भिखारी
चाहक था फूलों का वह तू प्यार-भरी फुलवारी
गायक था उसकी वीणा तू नव धुनि नव लय प्यारी

कवि था वह, उसकी स्वर्णिम दुनिया की तू रानी रामी
तेरी अधर-सुधा पी उसकी अमर हुई वाणी रामी

नव प्रभात की प्रथम रश्मि
मुग्धा-सी खोल स्वर्ग का द्वार
सहज लाज - रंजित आनन
चितवन से पुलकित कर संसार

तू अनजान अप्सरी - सी
उतरी जगती में ओ सुकुमार
दीन रजक-गृह सजनि ! सजाया
अपना सोने का संसार

तू निज दीन-कुटी में इन्द्रपरी-सी जब गाती रामी
वंगभूमि की सारी सुषमा कविता बन जाती रामी

मंजुल वंजुल - कुंजमयी
सरसी तट दुग्ध-शिला आसीन
सजनि स्वर्ग की धोबिन करती
वस्त्र पुराने पुनः - नवीन

प्रात सुनाती चकई को
प्रियतम का प्यारा मिलन-संदेश
व्यथित पपीहे से कहती—
'प्रिय ! पिया गया तेरा परदेश'

मिलन - वियोग - भरा देखा
प्रणयी का क्षुब्ध व्यथित संसार
फिर भी उछल-उछल फूलों को
देखा बनते प्रिय - हिय - हार

बढ़ी मिलन की लगन मगन
तन-मन हो गया रसिकवर में

तिरने लगी चाह हंसिनि प्रियतम के
प्रेम - सरोवर में

नीड़विहीन विहंगिनि ! तूने
पाया निज जीवन - आधार
भाग्यवान हे कवि चंडी
पाई तूने कविता साकार

सुंदरता ने तुझसे पाया सत् का परिचुंबन रामी
विधुर विश्व ने अरे स्वर्ग का पाया आलिंगन रामी

राका

अप्सरी ! कौन तू बोल-बोल
क्यों हँसती नभ में डोल-डोल
यह लहर-लहर पर लहर-लहर
यह दुग्ध-धार-सी छहर-छहर
फैली पारद-सी लोल-लोल
अप्सरी ! कौन तू बोल-बोल

अयि रजत - हिंडोले झूल-झूल
शेफाली-सी नभ फूल-फूल
मोती बिखेरती राशि-राशि
हिय की मंजूषा खोल-खोल
अप्सरी ! कौन तू बोल-बोल

गिरि के शिखरों पर नवल-नवल
रेशम - जाली-सी धवल-धवल
तरु-किशलय-पुंजों में छल-छल
कुंजों-कुंजो झलमल-झलमल

हिम-परियों-सी टलमल-टलमल
लुकती-छिपती-दिखती पल-पल
बिछ जाती सरिता के तन पर
चाँदी चुंबन-सी गोल-गोल
अप्सरी ! कौन तू बोल-बोल

फैली वसुधा में बौर-बौर
फेनिल झागों - सी झौर-झौर
स्वर्गंगा की क्या लुढ़क गई रे
हीरक तारक चन्द्र-मौर

हो चूर-चूर जो बिखर-बिखर
सित धुआँधार-सी निखर-निखर
तिर-तिर फिर-फिर अग-जग जल-थल में
नाच-नाच गिरि-शिखर-शिखर
हिल्लोलमयी करती किलोल
अप्सरी ! कौन तू बोल-बोल

जगमग हीरों - सी लड़ी-लड़ी
फेनिल फूलों की छड़ी-छड़ी
अब झड़ी अरे ! यह झड़ी-झड़ी
नभ-कुन्द-कली की कड़ी-कड़ी

रे छिन्न पँखड़ियों की हिलोर
छूती जगती का ओर-छोर
रुन-रुन झुन-झुन रुन रुन झुन-झुन
दिग्-वधुओं की नूपुर-किन-किन
नर्त्तकी ! अमररूपसि विलोल
अप्सरी ! कौन तू बोल-बोल

ओ नभ-सर की हंसिनि ! किशोर
फैला निज चन्द्रिल पर अथोर
चुगती क्या जग की पोर-पोर—
चल चचु रुपहली बोर-बोर

कुछ सिहर-सिहर कुछ फहेर-फहर
लेती, झकोर पर यों झकोर
आ जा मेरे मानस रंगिणि
चुन ले मेरे मोती अमोल

रे विधुर विश्व के स्वप्नों में
किल्लोलमयी ! दे घोल-घोल
तब जानेगा नादान विश्व
मेरे मोती का मोल-तोल

अप्सरी ! कौन तू बोल-बोल
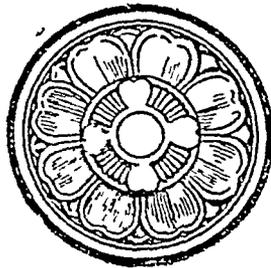
पावस-प्रवासी

हैं नागवार जीवन के दिन
क्षण-क्षण कठोर अवसादों में
हे गाँव ! चला मैं छोड़ तुम्हें
लाचार भरे इस भादो में

कितने बरसों के बाद बना था
इसी जेठ में सुखद सुदिन
कितनी उमङ्ग से लाया घर
कातिक की पूनो-सी दुलहिन

दिन वे 'असाढ़' के उमस-भरे
कसमसवाली सावन-रातें
कब निकल गईं !—पर निकल न पाईं
आधी भी मन की बातें

भादो में 'मिहँदी'-पर्व, बिताये
दिन वे उँगली पर गिन-गिन
कितने बरसों के बाद बना था
इसी जेठ में सुखद सुदिन

वे मिहँदी - लगे पाँव देखूँ
कैसे नित पड़ते कादो में
हे गाँव ! चला मैं छोड़ तुम्हें
लाचार भरे इस भादो मे

मैं कहूँ प्राण - मन में मेरे
उठती है कौन व्यथा गहरी
मैं सहूँ अरी तू छुरी-सरिस
पुरवैया 'माघा' की बह री

जो हूक कलेजे में भरती
दो टूक जिगर मेरा करती
वह देख गाँव के एक ओर है
खड़ी प्रिया मेरी पतरी

वे जपा - कुसुम के चरण
चढ़ी है जिनपर मिहँदी की लाली
वह जादू-पुर की परी
शीश पर उसने नागिनियाँ पालीं

पर हाय ! कहाँ वह खड़ी
देख वह पड़ी भूत-सी जो ठठरी
कुछ घास-फूस कुछ लता-बेल की
बिखरी - बिखरी - सी छतरी

यह दो हाथो की मढ़ी
कमाई हाय ! जिन्दगी की सिगरी
यह भाग्य-कूप अँटती न जहाँ
मेरे अरमानो की गगरी

यह कुटी हाय ! यह पञ्चवटी
मेरे प्राणों की सीता की
मैं चला अकिञ्चन आज
खोज करने कञ्चन 'मन-चीता' की

लाई जो मेरे जीवन के नभ
चन्दा - सी सुहाग-बिंदिया
मैं दे न सकूँगा उसे हाय ! क्या
दो क्षण भी सुख की निंदिया

पर जभी गरजते हैं बादल
यह मढ़ी थरथरा जाती है
दो-चार बूँद गिरतीं यह तो
सौ - धार हरहरा जाती है

पत्नी सुख-नीड़ों में वन के पशु
सोये अपनी माँदों में
पर बैठ बिताते हम रजनी
निरुपाय भरे इस भादो में

[२]

हैं दशो दिशाएँ बन्द और यह
पावस - अंधियाली छाई
डगरों पर काई - कीच और
कगरों पर घास घेर आई

ये भरे तलैया - ताल
नदी-नाले न कहीं नैया — बेड़ा
ओ पथिक ! अरे पावस का पथ
जीवन - सा ही टेढ़ा - मेढ़ा

पर जिसे न रोक सकी लहराती
कोदो - मकई की माया
फूलों से सजे आम-महुए के
बागों की शीतल छाया

रस में डूबे धन - खेतों में
भीनी पुरवैया के झोंके
जो चला जा रहा गाँवों की
पावस की उमड़-घुमड़ खोके

जो चला जा रहा एक देह में
दो प्राणों की साँस लिये
जो चला जा रहा एक पिकी के
जीवन का मधुमास लिये

वह भाग्यहीन मजदूर
नहीं जिसका हक जीवन-स्वादों में
ओ गाँव ! तुम्हारा लाल चला
परदेश भरे इस भादो में

चैत की पूनो

यह मधुर यामिनी चैत-चाँदनी टेर रही है द्वार-द्वार
खोलो किवार, खोलो किवार

जिसने न कभी देखे सपने
जिसने न किया है कभी प्यार
ऐसे ओ जग के जरठ जीव
तुमको आई प्रभु की पुकार
खोलो किवार, खोलो किवार

अपनी चिन्ताओं की सुलझन
जो खोज रहा गृह-बन्द किये
तन-मन मैला करता छिप-छिप
जो तामस-सुरा अमन्द पिये
ऐसे ओ जग के अन्ध जीव
प्रभु के सनेह की धार लिये
आई चिंतामणि - ज्योति जलाने
उतर तुम्हारे हिये-दिये

दो घड़ी तुम्हारे लिये आज प्रभु ने खोले हैं स्वर्ग-द्वार
खोलो किवार, खोलो किवार

जिस व्यथित 'वियोगिनि' का
प्रियतम युग-युग से 'छाय' रहा विदेश
जो कल्प-कल्प से माँग रही
सूने नभ से उसका सँदेश

ऐसी ओ 'बिरहिन' वसुंधरे
यह प्रीति-सुधारस में बोरी
तेरे सुहाग के चन्द्रलोक से
पकड़ रश्मियों की डोरी

अमरों की प्रेम-दूतिका
तारों के पथ गाती-मुसकाती
लेकर उतरी तेरे पिय की
मोती से लिखी प्रेमपाती

पी इसके वर्ण-वर्ण का मधु अक्षर-अक्षर का धवल प्यार
हलका कर ले कुछ विरह-भार
खोलो किंवार, खोलो किंवार

जल रही आज चन्दन-बाड़ी
यह दावानल-अंगारों से
हो रही रैन-दिन ध्वस्त-पस्त
अपने संघर्ष-प्रहारों से

वह माली !—सींची थी जिसने
बाड़ी यह अमिय-फुहारों से
खींची थी जिसकी भाग्य-रेख
तारों के बंदनवारों से

ढल रही आज उसकी भींगी
आँखों से पावन मांगल्या
वह सप्त सिन्धु के ज्वार सदृश
करुणा की कुल्या पर कुल्या

ओ विश्व-चमन ! कर पाप शमन, त्रयताप-हरण यह सुधाधार
खोलो किवार, खोलो किवार

जिसने सीखा है बूँद-बूँद
के लिये तरसना ही रोना
भर रहा कौन यह दुग्ध-सिंधु से
उस जग का कोना-कोना

दो-चार चमते टुकड़े छिपते
जहाँ, न लगे कहीं टोना
उस जग में आज बरसती है
कितनी चाँदी, कितना सोना

ओ दीन-हीन कंगाल मनुज
इतनी निधि कहाँ सँजोओगे
इस अमरों के त्यौहार-समय
कैसे गृह-भीतर सोओगे

चाहे जैसा भी हो प्रभात
गोले-प्रपात या वह्नि-वात
पर इस मधु की चाँदनी रात में
आज कहीं जो रोओगे

तो पाप अरे मानव ! न करो इस शिव-सुन्दर का तिरस्कार
खोलो किवार, खोलो किवार

प्रवेश-पर्व

१

सम्मुख भविष्य का सिंह-द्वार

तू बढ़ चल रे मानव ! सम्मुख वह खुला हुआ है मुक्ति-द्वार

सम्मुख भविष्य का सिंह - द्वार

तेरा अतीत—

तू पूर्ण बुद्ध

जब हुआ कि तेरा श्रीगणेश

तू सर्वोपरि मानव !

तुझसे ही रचे गये हरिहर-सुरेश

सदियों के पथ से चला किया

तेरा जीवन-रथ वेगवान

चुभ गये किरण से प्रकृति-हृदय

तेरे मनोज के कुसुम-बाण

संसृति फैली, संतति बिखरी
वह एक स्रोत उमड़ा महान
सौ-सौ प्रवाह में उदय-अस्त –
फैला वह ज्यों रवि भासमान

तेरा अतीत—

वह प्रथम प्रात
वह मंगल सृष्टि वसन्त गान
जब टेर रहा तेरा कोकिल
सब मानव मानव हैं समान

२

यह वर्तमान—

नर या वानर
क्यों बर्बरता से तुझे प्रीति
जीवन - खेती के हित तेरी
सभ्यता बनी क्यों ईति - भीति

किसके पीड़न के लिये नरक
किसकी छलना के लिये स्वर्ग
किसके बन्धन के लिये रचे
तूने सौ - सौ ये वर्ण - वर्ग

रे हिंसक - पशु ! करता प्रहार
किसकी संतति पर तू अशंक
रे ध्वंसक दानव ! रे मानव
तू मानवता के सिर कलंक

यह वर्तमान—

यह काल निशा—

उमड़ी है चहुँदिशि में पुकार

'ओ सदय रश्मि ! है कहाँ-कहाँ—

रे इस कारा का मुक्ति-द्वार'

सम्मुख भविष्य का सिंह-द्वार

तू बढ़ चल रे मानव ! सम्मुख वह खुला हुआ है मुक्ति-द्वार

३

तेरा भविष्य—

यह पुण्य पर्व

तू कर प्रवेश मानव बनकर

ओ रे गरीब ! ओ रे बेकस

कर सिर ऊँचा तू चल तनकर

बल से भोग्या वसुधा—बल से

निज स्वत्वों में तू कर प्रवेश

बन सबल, स्वस्थ, प्रकृतिस्थ

अरे ओ निर्बल ओ कंकाल-शेष

प्रभु कौन ? भाग्य - लिपि क्या

कैसा रचना-विधान ? क्यों कर अकाट्य

रे सूत्रधार ! तू खेल न अब

वह जीर्ण - शीर्ण वैषम्य - नाट्य

तुमसे ऊँचा है कौन ? समझता

जिसे मसीहा तू अदृश्य

तुमसे नीचा है कौन ? अरे रे

कहता तू जिसको अस्पृश्य

सब एक सतह पर मन्दिर-मठ-
झोपड़ी क्षुद्र किंवा महान
इसलिये कि सबके अन्तराल
है एक ज्योति मानव समान

तेरा भविष्य—

तेरा दर्पण

लख उसमें तू निज रूप-ज्ञान
तू स्वयं प्रगति, तू स्वयं नियति
तू स्वयं अटल अपना विधान
ओ सर्वोपरि मानव महान
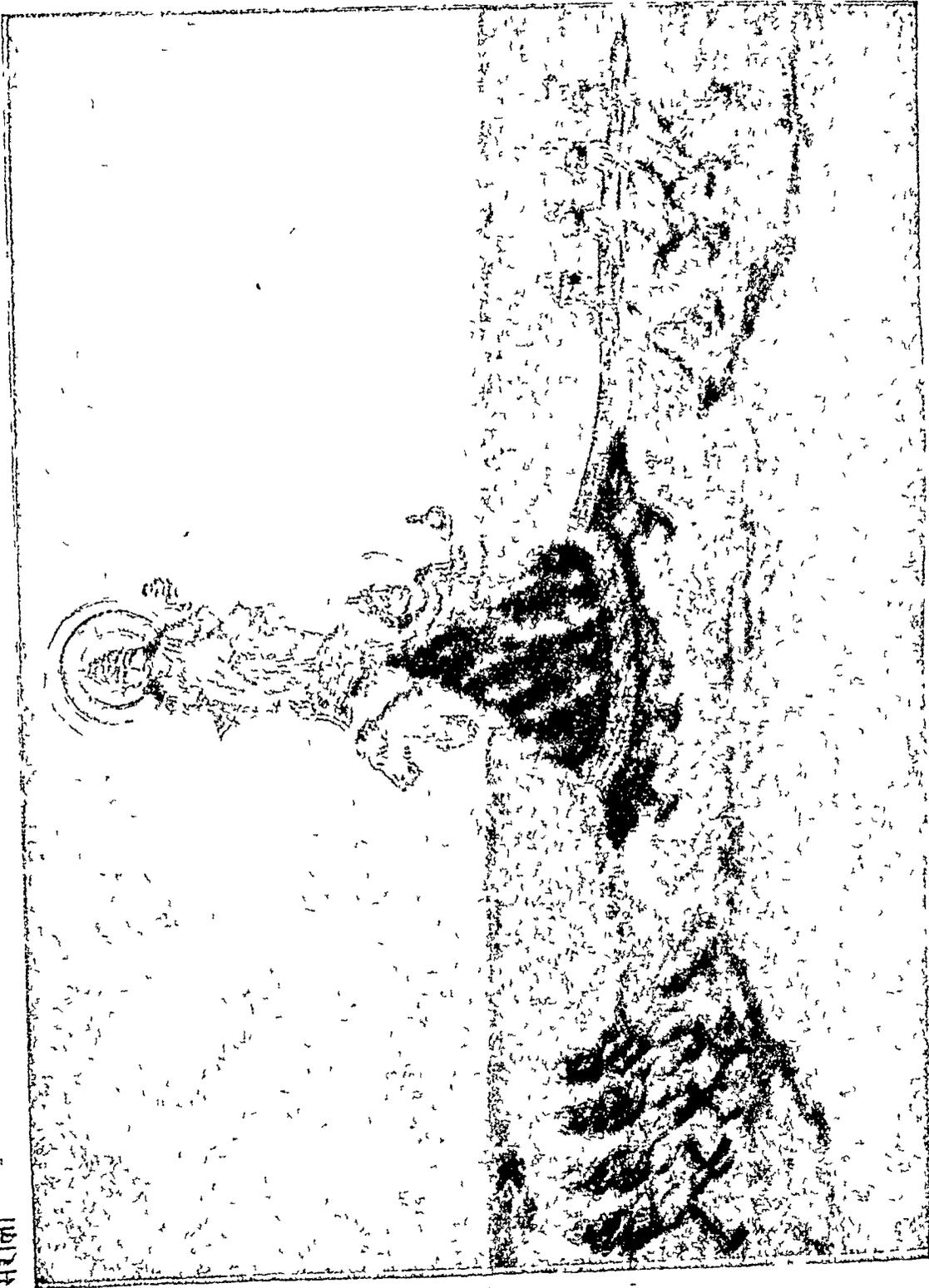
गोपित-मथन में लिते है ... रख-सुहाग के ... हैं।

रक्त-मंथन

जब युग के देव और दानव
शोणित - मंथन में पिलते हैं
ध्रुव तभी विश्व के सुख-सुहाग
के अमृत-रतन निकलते हैं

१

प्रभु की करुणा का जो भागी
सपनों का राजा बड़भागी
उस दिव्य-नयन त्रिकालदर्शी
कवि के मन पूर्व-कथा जागी

त्रेता-युग सत्य-अहिंसा में
पल पुण्य तपोवन का जीवन
उदयाचल अरुण तलहटी में
कर रहा स्वर्ग का था सिरजन

मनु और सत्यरूपा-संतति
बढ़ ब्रतति-प्रतति-सी फूल-फूल
छा गई दिगंचल में वसन्त-चुंबित
रसाल - सी झूल - झूल

नव ललित कलाओं का सिंगार
संगीत-काव्य-रस पुंज-पुंज
जग बना चैत्ररथ साम-गान से
कुञ्ज-कुञ्ज में गूँज-गूँज

लख बाल-लुनाई पृथिवी की
मानव की निश्छल मधुराई
देवता सोचते—स्वर्ग और भारत में
कौन बड़ा भाई

किन्तु शक्ति की सफल परीक्षा
विना क्रान्ति होती न कभी
शान्ति-स्वाद बढ़ता जीवन को
मिलता है संघर्ष जभी

इसलिये सत्यरूपा का कुल
आई प्रबुद्ध करने निकषा
उसके कठोर छलना-प्रपंच से
पृथिवी हुई हाय ! विवशा

वे नैकषेय वे चिर अजेय
पशु-प्रभुता के वे अधिकारी
उनकी उत्तुंग अहंता-सी
लंका त्रिकूट पर थी न्यारी

पापिनी नागिनी-सी शोणित—
भोगी पृथिवी पर निःशंका
वह पुंजीभूत प्रभूत रुधिर की
नहीं स्वर्ण की थी लका

फिर 'युद्धं देहि' युयुत्सु
दानवों की दुर्दांत पुकारों से—
मानव के शीतल, स्निग्ध गृहों
पर उनके वज्र-प्रहारों से—

थे डँवाडोल पृथिवी-खगोल
चहुँदिशि में 'त्राहि-त्राहि' छाई
आर्यों की पुण्य-भूमि में भीषण
दुर्दिन-घटा घेर आई

वह रक्त पात ऋषियों का—
जिसकी बिंदु-बिंदु की थी गणना
उसके ही अन्तराल मे तो रे
शक्ति-इन्दु का था पलना

वह रक्त-कुड पृथिवी के
अन्तस् से फूटी बन चिनगारी
वह शक्ति-शिखा कामना
राम की तिरहुत-पति की सुकुमारी

ओ रक्त-पात ओ वह्नि-वात
तुमसे न धरा यह भयभीता
इसलिये कि शोणित मथकर ही
युग ने पाई सुख की सीता

वह चिनगारी जिससे कि जली
वह पाप-ताप लंका सारी
वह आप बनी वन्दिनी कि
जिससे टले विश्व की अँधियारी

२

ओ रक्तपात! तुमने जब
सकल प्रतीची की काया सींची
जब जग की ज्योति मसीहे ने
सूली पर निज आँखें मींचीं

जब शोणित-मंथन-पर्व मनाया
हाय! पश्चिमा ने रोकर
तब मिला अरे अमृत जीवन
उसको निज ईसा को खोकर

ओ रक्तपात! इसलिये न
तुमसे धरा आज भी भयभीता
उपजेगा ही तुमसे फिर भी
कोई ईसा अथवा सीता

जब युग के देव और दानव
शोणित-मंथन में पिलते हैं
ध्रुव तभी विश्व के सुख-सुहाग के
अमृत-रतन निकलते हैं

उलझन
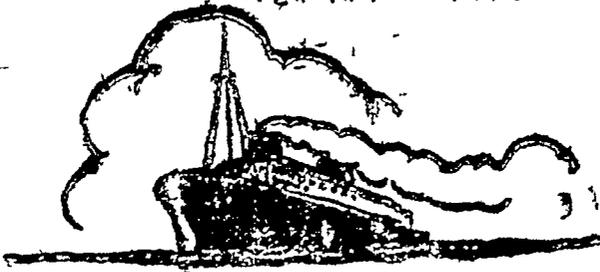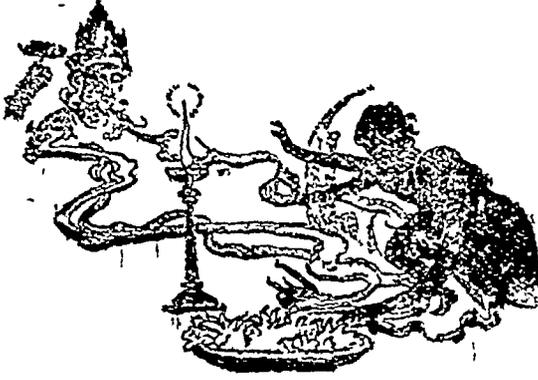
उस दिन से इस उलझन में
उन्मन अनमन मेरे गायन
करता जिसका मैं अभिनन्दन
वह नर है या नारायण

पूछा जिस दिन फूलों से—
ओ तुम विश्व-सुन्दरी के पावन
प्रभु-पद तक पहुँचानेवाले
नवभक्ति-भावना के धावन

छवि की थाली में तुम जिसकी
आरती-शिखा से रहे फूल
कवि की भारती कहो वन-रोदन
क्यों करती है उसे भूल

'यह नर की भूल कि नारायण को
नहीं आजतक भी जाना
क्यों जलता दीपक—यह न
समझ पाया बेगाना परवाना

है किसके लिये कौन व्याकुल
है किसमें कौन परायण रे
नर खोज रहा है नारायण को
या नर को नारायण रे'

यह कठिन प्रश्न—पर इतना तो है
ज्ञात सभी मतिमानों को
तिल-तिल अपनेको जला
बुलाता है दीपक परवानों को

मैं तुच्छ धूल का फूल मुझे तो
अपनी पृथिवी ही प्यारी
मैं कभी खोजने कहाँ गया
उन अमरों की अलका न्यारी

लो समझ मूढ़ कवि ! रूप-संपदा
की छवि की यह परिपाटी
लेने मुझको निज शीश अरे
भगवान बने मूरत-माटी

तुम किसको कहते अग्रगण्य
परिमल में और प्रभंजन में
है कौन धन्य समधिक बोलो
शवरी में औ' रघुनन्दन में

उस दिन से इस उलझन में
उन्मन अनमन मेरे गायन
करता जिसका मैं अभिनन्दन
वह नर है या नारायण
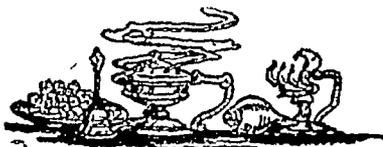
ओ मानव

और कितनी दूर भोले

तुम बढ़ोगे तीर से भरपूर कटि तूणीर को ले
और कितनी दूर भोले

स्निग्ध पंचवटी-कुटी के
ओ प्रपंच-विरत विलासी
किस प्रवंचन की पिपासा
जल उठी तुममें विनाशी

आज ! माया का तुम्हारे नयन कंचन-हरिण डोले
और कितनी दूर भोले

ओ छले मानव ! चले तुम
जिस कनक की कामना ले
वह छिपा दानव ! कि छवि की
बस तुम्हें छलना लुभा ले

हाय ! मति हर ली नियति ने कौन नर की आँख खोले
और कितनी दूर भोले

मान लो धन्वी कि ओ तुमने
अमित अभिवृद्धि पा ली
किन्तु युग-युग की तपस्या—
की चिरन्तन रूपवाली

सिद्धि की सीता मनुजता-
शीश की सिन्दूर-लाली
देख लो तुमने मिटा ली
अब तुम्हारा सदन खाली

बंधु-बांधव-प्रीति सब तुमसे जली ओ निठुर शोले
निखिल सृष्टि-वसन्त के हित तुम बने दुर्दांत ओले
और कितनी दूर भोले

दादा के प्रति

था शीश-ताज नवरत्नों का, पर थी न माँग की मर्यादा
इसलिये बने हिंदी - रानी की तुम सुहाग - बिंदी दादा

युग - युग पहले जब उस विदेशिनी परकीया दीवानी का
जादू फैला—था ध्यान किसे अपने घर की कल्याणी का
अपमान करें भारतवासी अपनी भारती - भवानी का
सह सका न यह—गुलाम वह रे अभिमानी राधा-रानी का
काया पलटी वह सती भारती फिर मुग्धा पार्वती बनी
उस हरिश्चन्द्र के हाथ ज्योति को वह मंगल-आरती बनी
पर उसे चाहिये था गृह - सीमा से आजादी का वादा
इसलिये मुक्ति संदेश लिये आये तुम महावीर दादा

तुम आये जग मे उषा-सदृश तब स्वर्णिम एक विहान खिला
तुम चले और पीछे-पीछे किरणों का कनक-विमान चला
नवजात विहगिनि-सी हिंदी ने पुलकित बंद नयन खोले
उस सिहरन-भरे मलय-प्रभात मे प्रथम-प्रथम निज पर तोले
ओ जादूगर! ओ इन्कलाब के रचनेवाले, तुम्ही बता—
जो फुदक रही थी कल कैसे वह आज मुक्त अम्बर डोले

तुम देवदूत वसुधा में तुमने प्रतिभा-सुधा भरी पूरी
तुम मूर्च्छित दलित हिंद में लाये दुर्लभ संजीवन-मूरी
वह कला 'मैथिली' की अशोक-लतिका-सी भला फली होती
बसता 'साकेत', अहंता की लंका क्या आज जली होती
यदि आता यहाँ न वह वाणी का वरद पुत्र सीधा-सादा
यदि आता यहाँ न वह कवि-किङ्कर अपना महावीर दादा

तुम एकव्रती प्रणयी तुमने उसपर तन-मन सब वार दिया
उस एक तपस्या में विभोर सुख का संसार बिसार दिया
उस युग की भिखारिनी को तुमने देव! गले का हार किया
अपनी सेवा का मधु प्रसाद अपने प्राणों का प्यार दिया
नखशिख नूतन छवि दे वाणी में एक नवल संस्कार दिया
क्षण-क्षण जीवन का सार अत फिर अरे! मरण-त्योहार दिया

\+ + +

वह गर्वोन्नत शत-शत कंठों की आज प्रबुद्ध पुकारों में—
इस तरुण देश के सिंह-पौर के विजयी वंदनवारों में—
लिख रही एक इतिहास चिरंतन अगणित नभ के तारों में—
तुम ध्रुवतारा-सा खड़े देव! उनमें सरनाम हजारों में
तुम मृत्युञ्जय तुम कलातीर्थ वाणी के—हिंदी-रानी के
तुम गायक अमर स्वदेश स्वभाषा की अभ्युदय-कहानी के

\+ + +

तुम ऐसे जिये कि जीना पल-पल हिन्द-हेतु पाथेय।
तुम ऐसे मरे कि जिसका यश-कलाप गीता-सा ज्ञेय ५

हम पार्थिव क्या जानें, शायद जीने से मरण श्रेय ज्यादा
इसलिये स्वस्ति-संकेत हमें देने गोलोक गये दादा
था शीश-ताज नवरत्नों का, पर थी न माँग की मर्यादा
इसलिये बने हिंदी-रानी की तुम सुहाग-बिंदी ६

तुलसी के प्रति

कवि ! तुममें और हिमालय में
है कौन महान तुम्हीं बोलो

हिमगिरि के प्राणों से निकली गंगा कलि-कलुष नसाने को
तेरे प्राणों का 'रामचरित' आया भुवि स्वर्ग बसाने को
हिम-गिरि उत्तर-पथ खड़ा संतरी-सा यह देश बचाने को
तू धन्वन्तरि - सा खड़ा देव ! जीवन - पीयूष पिलाने को

हिम-गिरि भारत का तेजवन्त पौरुष फिर भी पाषाणी है
तेरी कविता तो भारतीय संस्कृति की तरल कहानी है
वह नगपति हिन्द-राज-रानी के शीश-ताज-सा है सुन्दर
तू तो भारत के शिव-सुन्दर की लाज विश्व-वाणी-मन्दिर
है लाज बड़ी या ताज राज यह आज तुम्हीं कविवर ! खोलो
कवि ! तुममें और हिमालय में है कौन महान अधिक बोलो

गरीबिन का बेटा

जीवन की गोधूलि !—मृत्यु की छाया फैल रही पल-पल है
दूरागत प्रिय पुत्र खड़ा मरती माता के पास विकल है
'अम्मा ! खोलो आँख, जरा बोलो न !—तुम्हारा मैं वनवासी
मुन्नू, आ पहुँचा हूँ माँ, बोलो ओ मेरी मथुरा-काशी !'

खुली आँख दो क्षण जीने की और तड़पती चाह प्रबल है
जीवन की गोधूलि !—मृत्यु की छाया फैल रही पल-पल है

'मुन्नू !—सच आया बिछुड़ा चन्दा मेरी बिगड़ी दुनिया का
अब आया प्यारा सुगना मेरी उजड़ी चन्दन बगिया का
बेटा ! मुन्नू !! ललन !!!'—आह फिर कंठ रुँधा लाचार बनी वह
गिरि-सी गति रोकती मृत्यु; हहराती गंगाधार बनी वह

'बेटा ' पा''नी'—माँग रहा वात्सल्य विकल वाणी संबल है''
जीवन की गोधूलि !—मृत्यु की छाया फैल रही पल-पल है
'बेटा, मेरे लाल !!—और दो क्षण ओ प्यारी मौत ! न आना
दो क्षण आज न ओ मेरी सहवासिनि चिन्ता-सौत ! सताना

बेटा, तू आया लाया माँ-हित यह अन्तिम घड़ी बधाई
चलते समय आज मालिन की फूल उठी जीवन-अमराई

बेटा ! बेटा !! आह ! न जीवन में जी-भर बेटा कह पाई
हाय ! न मुझ माँ की गोदी के दूध-पूत की साध अघाई
कठिन गरीबी की दुनिया ! मायूसी के जीवन की आहें
रहीं सिसकती ही कितनी मन की मेरे मन ही में चाहें

बेटा ! बेटा !! हाय ! जहाँ बेटा भी माँ से छिन जाता है
बेटा इकलौता विदेश में, माँ का दिन गिन-गिन जाता है
दो पैसे के लिये हाय ! मेरा वात्सल्य दुलार मिट गया
दो पैसे के लिये गरीबिन मुझ मालिन का बाग लुट गया

भरे प्यार से प्राण-कटोरे, पीनेवाला पास नहीं है
हाय ! गरीबिन माताओं का इस जग में इतिहास यही है
अरे दीन - कंगालों के उर किसने प्रणय-वेलि उपजाई
किसने रे गुदड़ी-चिथड़ों में अरमानों की सेज सजाई

जिसे चाहती थी प्राणों-पलकों में झुगा झुला सहलाऊँ—
दूर हुआ वह बछवा माँ-थन से यह दुनिया बड़ी कसाई
दैव, पेट की भूख जहाँ रे ! वहाँ जिगर की भूख न देना
जलने को जो बनी चकोरी उसको चन्द्र-मयूख न देना

बेटा ! आ जा पास, आज भी तो दो क्षण यह हृदय जुड़ा लूँ
आज मृत्यु की छाया में जीवन की सारी तपन मिटा लूँ
बेटा ! मुझ दुखिया के अंचल-दीप—चली मैं—तू जल-बल रे
होगा कभी वसन्त, कंटकों में गुलाब-जैसा तू पल रे'
एक झोपड़ी शून्य !—कौन जाने !—बाहर तो चहल-पहल है
जीवन की गोधूलि !—मृत्यु की छाया फैल रही पल-पल है

द्वितीय भाग

मंगलाचरण

खिलनेवालो, आँखें खोलो
मंगल-घट-प्रात-परी लाई इसमें अपनी पाँखें धो लो
जगनेवालो, आँखें खोलो

बोले पिक हृदय-कसक खोले
गुल के मजार बुलबुल रो ले
तुम सुनो न अफसाना बेगाना
इस दुखिया जग का, भोले
दो क्षण प्रभात के मलयज में तुम अपनी अभिलाषें तोलो
उठनेवालो, आँखें खोलो

चल रही चले यह चिनगारी
जल रही जले यह फुलवारी
उस तरफ जीतती मृत्यु—
तुम्हारी ओर सृष्टि की है बारी
तुम दग्ध मरण के ढूहों पर बन जीवन की साखें डोलो
बढ़नेवालो, आँखें खोलो

तुम उगनेवालों की जय हो
तुम खिलनेवालों की जय हो
इस नवल वर्ष के नव प्रसाद से—
जग शैशव का उपचय हो
हम झेल रहे पतझड़, वसत में तुम परन्तु आँखें खोलो
ओ जग के शिशु, आँखें खोलो

तू माँग रहा किसका निवास

ओ मेरे सूने सदन ! कहाँ खोया तूने वह छवि-प्रकाश
तू चाह रहा किसका निवास

तू शीतल नीड़ वसन्ती मेरी
प्राण-विहगिनि का प्यारा
तू संगम-तीर्थ जहाँ बहती
मेरी रसवन्ती की धारा

ओ रे सजीव संपुट सनेह के
आज कौन यह परिवर्तन—
मैं क्या समझूँ तू हाय
निरा पाषाण - ईंट - चूना - गारा

प्रतिमा-विहीन मन्दिर
उचाट छाया तेरे कोने-कोने
वह कहाँ हुआ, का वरद हाथ
जो दे प्रसाद दोने-दोने

प्रवासिनी

मेरी माया-ममता भूखी
यह आज सुधा-सरिता-सूखी—
गृह ! तुझे देख निरुपाय हाय
मैं हो जाता रोने-रोने

वे सजल सुहावन सावन-से
उमड़े लोचन लोने-लोने
आये किस दूर गगन-निकुंज में
वे छवि के छैले-छौने

मेरे स्वप्नों की अमराई
चातकी मानसी कुम्हलाई—
रे सूने सदन ! विलोक तुझे मैं
हो जाता रोने-रोने

मैं दग्ध माँगता हूँ तुझसे
प्रिय शीतल बरसाती बतास
तू माँग रहा किसका निवास

२

ओ गृहिणि-विना गृह मेरे
कोकिला-हीन ओ कुंज ! कौन टेरे अब साँझ-सवेरे
ओ गृहिणि-विना गृह मेरे

तेरी गुमसुम इन दीवारों की
जिस दिन थी जड़ता टूटी
मैं समझ गया था पाषाणी से
कैसे सुर-सरिता फूटी

उन चरणों की नूपुर-धुन सुन
पत्थर भी देते थे ताली
उन तलवों की लाली छूकर
मिट्टी भी बनती छविशाली

वह आँगन का तुलसी-चबूतरा
आज पड़ा खाली-खाली
जिस अंचल का अनुराग
दृगंचल की सनेहवाली प्याली

पी-पीकर पली ; फली जिसके
सुकुमार करों की छाया में
वह चली और यह सूख चली
इस सावन में तुलसी-डाली

जो देख न सकतीं आँगन की
काली-काली कीचड़-काई
भाती जिनको पुनीत गोबर की
गोरी चिकनी सुघड़ाई
उनके ही हाथों की रचना
उनके ही मन की मधुराई—
नीलम के एक चँदोवे-सी
सरसब्ज डहडही अमराई—
कुम्हड़े की बेल लौकियों की
कलँगी यह आँगन रहा माँग—
राधा के हाथों धरे अरे
माधव-सिर मोरमुकुट-नाईं
पर वृथा आस-अभिलाष खो गये ये सुख-साज घनेरे
ओ गृहिणि-विना गृह मेरे

गीत

प्रिये ! ये सुधि के बादल छाये

मेरे वातायन के सम्मुख
कौन वियोगिनि यह धूमिल-मुख
किसकी आँखों से धुल-धुल ये काजल छितराये
प्रिये ! ये सुधि के बादल छाये

अभिसारिका कौन यह आली
जिसकी कबरी की शेफाली—
प्रिय से मिलन पूर्व ही यों बिखरी, दल कुम्हलाये
प्रिये ! ये सुधि के बादल छाये

आज मुझे लगती प्रवासिनी
विरहिणि-सी यह व्योम-वासिनी
प्रिये ! न क्या तेरे घर घन ये विरही बन छाये
प्रिये ! ये सुधि के बादल छाये

उमड़ा महा शून्य में भर-भर
सुधि-सी बिजली की लौ घर-घर
इस झर-झर में प्रिये ! प्राण ये रोयें या गायें
प्रिये ! ये सुधि के बादल छाये

माँ के चरणों में

कथनीय कहाँ कह पाता है

माँ! मेरा कवि तेरे समीप तुतला-तुतला रह जाता है

कथनीय नहीं कह पाता है

इतने वर्षों के जीवन की

जो पाप-छाप कीचड़-काई

इस मन-मन्दिर में धुआँधार

जो चिन्ता की कालिख छाई

सब मांगल्या तेरे सनेह की कुल्या में बह जाता है

माँ! मेरा मन तेरे समीप शिशु-सा भोला बन जाता है

परवाह न जिसे हवा जग की

अनुकूल था कि प्रतिकूल वही

जो चढ़े किसी पार्थिव-पद में

ऐसा यह पूजा-फूल नहीं

क्यों वही तिहारी चरण-धूल में लोट-लोट सुख पाता है

माँ! मेरा मन तेरे समीप अभिमान नहीं रख पाता है

जब मन चढ़कर चिंतन-रथ पर

चलता है प्रभु-वन्दन-पथ पर

तू कौन अरी जो खड़ी सिद्धि-सी

उस पथ का अथ-इति बनकर

क्यों भक्ति-भरा मेरा मन तुझमें अचल मुक्ति पा जाता है

माँ! मेरा कवि तेरे समीप अपवर्ग-स्वर्ग पा जाता है

कथनीय कहाँ कह पाता है

माँ-बेटा

१

कहाँ गये वे मेघ-बाल, माँ
अभी-अभी जो झूल रहे थे नभ-विटपी की डाल-डाल, माँ
कहाँ गये वे मेघ-बाल, माँ
कहाँ गये वे छवि-छौने माँ! सूना हुआ गगन-आँगन
कहाँ गया खोजने उन्हें वह रोता सावन मनभावन
वे बेटे किस माँ के जो सब की आँखों के नूर बने
जिनके नव प्रसाद मानव के मंगल-घट परिपूर बने
माँ! किसका वह वरद दूध? पी जिसे सौम्य वे पीन बने
अजय उदय से अस्त व्योम में एकछत्र आसीन बने
किस जननी सुहागिनी का माँ! सिर-सिन्दूर फला ऐसा
राजहंस जन्मे जिसमें वे—वह छवि का मानस कैसा
माँ! तू चतुर बड़ी, बतला कैसी उनके मनुहार हिये—
भरी!—कि हँसते तो हीरा, रोते तो मोती-धार चुए
कहाँ गये वे व्योम-कुंज में ज्योतित रूप-जुन्हैया-से
पहने इंद्रधनुष-माला परियों के कुँवर कन्हैया-से
माँ! किस देश गये वे प्यारे, सूना बना गगन-आँगन
कहाँ खोजता होगा उनको रोता सावन मनभावन
किस बड़भागिन के आँचल के धन वे सुघड़ प्रवाल-लाल, माँ
कहाँ गये वे मेघ-बाल, माँ

यह कहानी क्या सुनोगे

ललन ! क्या उन मेघ-शिशु-से वीर वलिदानी बनोगे

यह कहानी क्या सुनोगे

पुत्र वे जिस वीर-सू के, विश्व की वह राजरानी
विपुल उसकी राजनगरी में बसे चर-अचर प्राणी
एक नवल वसंत-पाटल-सी विकच उसकी जवानी
मधुर रसवंती बड़ी ही उर्वशी-सी वह सयानी

राजरानी राजमाता निखिल जग की पालिका वह
सृष्टि-शतदल फूलता जिसपर अनंत-मृणालिका वह
रूप-राका में छनी, नव अग-अंग सुहाग निखरा
विभव के मधुमास में धन-धान्य पुर-वन-बाग बिखरा

वह कलाप्रिय चमन उसका नित सजाती प्रकृति-बाला
शुक-कलापी-सारिकाओं से सजी वह रंगशाला
स्नेह-सुख में मदिर उसके उमड़ते जो प्राण गीले
तो अनेकों फूट झड़ते गीत के झरने सुरीले—
प्यार की नदियाँ !—अरे वह प्राप्त छवि-संभार उसको
चूम लेना चाहती अमरावती सौ बार उसको

❀ ❀ ❀

किंतु बेटा ! एक-सा दिन एक-सा सुख क्या चिरंतन—
सुलभ है इस मर्त्य में क्या पूर्णिमा छवि की सनातन
समय पलटा—असह दुर्दिन आह ! ग्रीष्म दुरंत आया
लू भयंकरमय बवंडर प्रेत-सदृश दिगंत छाया

धूल-छार अपार चहुँ दिशि आग सौ-सौ धार बरसे
वह चमन झंखाड़ झन-झन आह रे विन वारि तरसे

राजरानी के चमन में तड़फड़ाते शुक-कलापी
आह! इस अलकापुरी को दग्ध करता कौन पापी
राजरानी विश्व की अब वह भिखारिन शेष-पंजर
आज उसका शस्य-श्यामल देश था सुनसान बंजर
देख विपदा असह माँ की पुत्र उसके नयन-तारे
दुःखिनी उस जानकी के वीर वे लव-कुश दुलारे
चल पड़े कर यह प्रतिज्ञा—'माँ! विपति का अंत होगा—
हम रहें न रहें, तुम्हारे बाग किंतु वसन्त होगा'
जल रही थी माँ तपस्विनि, चल रहे थे वे भगीरथ
खोजते संताप-हारिणि सुरसरी बैठे पवन-रथ
थक हुए धूमिल मलिन, तब यह सुनी आकाश-वाणी—
'खोजता रे तू किसे? तू स्वयं जीवन, स्वयं पानी
है छिपा मधुमास का उल्लास तेरे रक्त-कण में
फूल-सा चढ़ जा गरीबिन के ललन! निज माँ-चरण में'
ये वही रे मेघ-शिशु प्रिय तुम जिन्हें पहचानते हो
किंतु क्यों उमड़े-झड़े-ये-यह कहाँ तुम जानते हो
वह मरण-त्योहार बेटा! पुण्य वह बलि-पर्व उनका
हो गये बलिदान हँसते—आह! कैसा गर्व उनका
दूध का ऋण रक्त देकर यों चुकाता वीर, बेटा
यों बदल देता गरीबिन जननि की तकदीर, बेटा
ललन! क्या उन मेघ-शिशु-से वीर बलिदानी बनोगे
यह कहानी क्या सुनोगे

विदा की वेला

मैं चला, लो प्यार, बेटा

खुश रहो, जी चाहता मैं चूम लूँ सौ बार, बेटा

मैं चला, लो प्यार, बेटा

यह न समझो मोह-ममता में न डूबा यह कलेजा

यह न समझो पुत्र और कलत्र से ऊबा कलेजा

धर्म का आदेश तज परिवार बलिपंथी चले जा

इसलिये निर्मम बना यह बाँध मनसूबा कलेजा

किन्तु तुम क्या जानते, बेटा, बना मैं क्यों सिपाही

छोड़ सुख-संसार गृह-परिवार बन एकान्त राही

रे तुम्हारे ही लिये यह धर्म का आदेश आया—

'पुत्र को सुख हो तभी जब बाप ले सर पर तबाही

पा तुम्हें मेरे ललन, यह सदन था कितना दुलारा
तुम हँसे जब बह चली कैलास से ज्यों गंग-धारा
प्रेम के पंछी, तुम्हारे नाचने को काछने को
अथक क्षण-क्षण सदन आँगन नीड़-सा मैंने सँवारा

किन्तु, मेरे कनक-पंछी, आ रहे दिन डोलने के
अब तुम्हारे पंख-युग ये मुक्त अम्बर तोलने के
इसलिये बेटा, चला मैं, बन्द दरवाजे धरा के
बस तुम्हारे ही लिये ले हौस हिय में खोलने के

हाय बेटा, आज सुख-सपना न घर आवास अपना
कुछ नहीं जल, भूमि, सूरज, पवन या आकाश अपना
आह भोले, तुम कहाँ हो जानते कितने युगों से
पड़ रहा हम बेकसों को बन्द पिंजरे में तड़पना

कर सकूँगा अब न मैं इस कनक-पिंजर की भटैती
मैं न दूँगा पुत्र तुमको यह गुलामी की बपौती
रुधिर से धोने चला हूँ यह कलंक कराल, बेटा
जिन्दगी यह बन गई है मुक्ति की पावन मनौती

यदि अधूरा प्रण रहा औ' मैं मरण की सेज लेटा
लो समझ, कर्तव्य तब होगा तुम्हारा कौन, बेटा
मैं चला, लो प्यार, बेटा

गीत
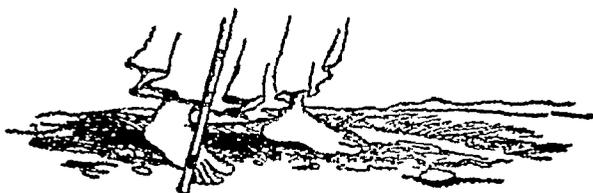
फूलो रसाल-वन फूलो

मृदु मन्द-मन्द मारुत-झकोर सँग—

झूलो, झुक-झुक झूलो

फूलो रसाल-वन फूलो

डाल-डाल नव कुसुमित सुषमित काया

सुभग ! विधुर जीवन में यौवन आया

कनक-किरीट समान मंजरी पीली-पीली छाई

मंजरियों में मधुर धूलि-मधु-गीली-गीली आई

अलियों में नव गान, गान में मादक-सी मधुराई

गा भ्रमर वसंत-बधाई

अब मंजु मालती-कुंज माधवी भूलो

फूलो रसाल-वन फूलो

गोरैया

मैं भोली-भाली नन्हीं-सी गोरैया
मैं दूध-सनी हूँ बनी यशोदा, मेरे कुँवर-कन्हैया
मैं भोली-भाली नन्हीं-सी गोरैया

फूसों की छतरी एक बड़ी बिखरी-सी
वह जीर्ण एक ठठरी पतरी-पतरी-सी
बन गई रंगशाला कैसे आ देखो—
यह मेरी पर्णकुटी निखरी-निखरी-सी

वह एक ओर है जौ-गेहूँ की बाली
कुछ पीली-पीली कुछ अरहर की काली
किसलय-दल कुछ मखमल-से कोमल लोने
वह एक भरी फूलों की मंजुल डाली

वह फूलमयी सुख-सेज मुलायम लोनी
वह शबनम से लबरेज अमिय की दोनी

चिर खुला द्वार खोते का, क्योंकि उड़ेंगे
ये कुँवर, रोक दूँ क्यों फिर स्वर्ग-निसेनी

बाँसों की वे कुछ पत्तीदार टहनियाँ
मेरे लल्ला के हित वे गरम सुथनियाँ
झुन-झुन डलियाँ वे पीली पकी चने की
मेरे मन्नू की राग-भरी पैंजनियाँ

किंकरी बनी, तब जुटा सकी यह सज्जा
दासी अपने बच्चों की, यह क्या लज्जा
यदि माँ न रहे तो कैसे स्वर्ग बनेगा
यह मलिन घिनौना खर-फूसों का छज्जा

निशि-दिन चुह-चुह कुल-कुल सुन इनकी क्रीड़ा
मीठी लगती मुझ जननी को श्रम-पीड़ा
जिसने भर दी है गोद दूध से छाती
उस सदय देव ने हर ली माँ की व्रीड़ा

मेरी मिहनत मेरी बच्चों की किस्मत बड़े गुसैयाँ
मैं भोली-भाली छोटी-सी गोरैया

मैंने देखी है मधुवन की छवि-दुनिया
गुलजार अंजुमन गुलशन की रँगरलियाँ
हँसतीं कलियाँ बल खातीं तितली-ललियाँ
नाचतीं चमन की परियाँ मैना-मुनिया

जलती है शाश्वत वहाँ रूप की ज्वाला
ढलता है निशि-दिन मधु-मरद का प्याला
मदहोश बने परवानों की यह बस्ती
खानाबदोश दीवानो की मधुशाला

किस सपने ऊबी बुलबुल ! तू है रोती
युग से सूलों पर काँटों को है सोती
ये नगमे तेरे सोज-भरे, क्या कोई—
खो गया अरी, तेरे प्राणों का मोती

चल छोड़ आशियाना यह बुलबुल सजनी
चल ले सुहाग के दिवस चैन की रजनी
ओ आग-भरी ! तू बाग लगा बिरवों का
मालिन बन बुलबुल अरी सुहागिन गृहिणी

होता जिससे स्वर्गिक यह विश्व प्रपंची
वह तान तुम्हारी वनिका-कटि ज्यों कांची
बड़भागिन कोयल ! बलिहारी इस स्वर की
तुम धन्य प्रकृति की अमृतमयी विपंची

उर्वशी अरी तुम हाय ! बनो क्यों काली
माँ छोड़ तुम्हारी गई तुम्हें सच आली
माता होती है हाय ! कुमाता कैसे
लांछन जगती पर यह मेनका-प्रणाली

ये चमन-निवासी खग भूले-भटके हैं
सुध-बुध खो घर के मग में ही अटके हैं
उस ओर मुड़ी जब-जब, मैंने भी देखा
वे लाल-बैंगनी फूल बड़े टटके हैं

मैं सिहर-सिहर जाती जब मलयज-झोंके
देते उँड़ेल प्याले कुंकुम-केसर के
कहती वनदेवी—'कहाँ रमी तू आली
यह श्री-सौरभ की नन्दन अलका तजके

ये मलिन धूलि-धूसर पर सजनि ! तुम्हारे
नीलम-से धोकर दूँगी ज्यों नभ-तारे
तज सुमन-सेज तुम कंटकमय जग-मग में
क्यों भटक रही ज्यों परदेशी बनजारे

जब-जब मुड़ती उस ओर, एक छवि-मेला
भर देता सपना आँखों में अलबेला
तब जाने किसकी धुनि कानों में आती
'माँ-आ, माँ-आ' यह हुई साँझ की वेला

यह रैन अँधेरी यहाँ किन्तु मेरे घर खिली जुन्हैया
मैं भोली-भाली छोटी-सी गौरैया
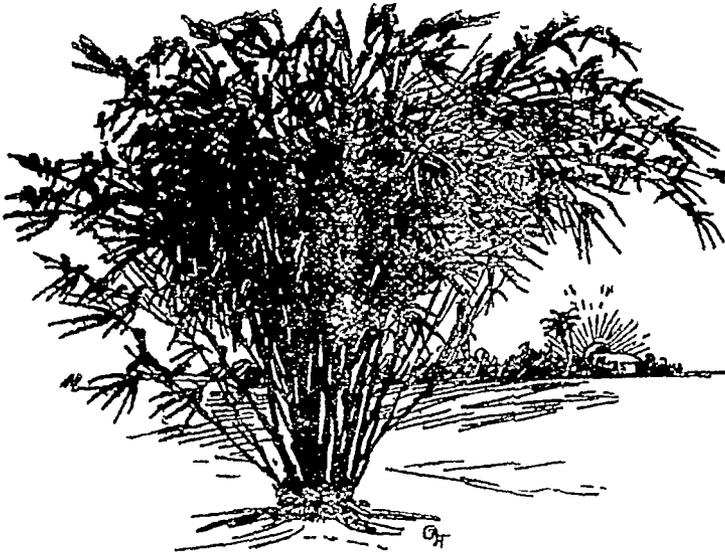
आम-महुआ

१

जिस दिन निज जादू-भरी उँगलियों से वसंत ने उन्हें छुआ
जिस दिन अनजान कहीं से नस-नस में उनकी रस-कलश चुआ
उस दिन गुदगुदी मची जो-वह वन-मुकुल खिली डाली-डाली
हो गये पुलक से लोट-पोट वे भाई-बहन आम-महुआ

❀ ❀ ❀ ❀

बचपन से ही भाई-रसाल मनमौजी बड़ा रसीला था
वह छैल-छबीला फैल-फैल छतनार सुडौल गठीला था
इमली-कटहल की बात कौन, वह कुछ न समझता जामुन को-
पर महुआ-बहिनी के हित उसका दिल सनेह से गीला था

पर बड़ी लजीली थी महुआ मीठी-मीठी भोली-भाली
घूँघट में सदा छिपी रहती उसके नयनों की मधु-प्याली
जब-जब आता दक्षिण-समीर करने उससे रस की बातें—
यह सौम्य खड़ी रहती, निराश वह मुड़ जाता खाली-खाली

वह रसिया-भाई आम रात-दिन करता रहता रँगरलियाँ
उसकी मखमली सेज बैठी पंचम में गातीं कोइलियाँ
मर्-मर् गाता समीर हर्-हर् देता वह पत्तों से ताली
इस होड़ा-होड़ी में गुंजित रहती थीं वनिका की गलियाँ

पर जानें क्यों महुआ उदास-सी रहती सदा मलोना-सी
उतरे हैं जिसके तार अरे! उस धुनि सुर-हीना वीणा-सी
नीलम की एक अँगूठी-सा वह भाई-आम प्रकृति-कर में
क्यों धूमिल महुआ बहन, जड़ी जो उसमें एक नगीना-सी

जिस दिन परन्तु मादक अंगुलियों से वसन्त ने उन्हें छुआ
जिस दिन अनजान कहीं से नस-नस में उनकी रस-कलश चुआ
उस दिन तो फूट पड़ा दोनों के जिगर पुलक का एक ज्वार
हो गये मुकुल से लोट-पोट वे भाई-बहन आम-महुआ

❀ ❀ ❀ ❀

२

भाई ने कहा, 'आज तो मन चौधवीं रात-सा फूल रहा
तेरे सुकुमार गले महुआ मोती का गजरा झूल रहा
मेरी अनमनी बहन! अब भी तो हँसी-खुशी दो दिन कर ले
री देख कि तेरी डाल-डाल प्यारा वसन्त अनुकूल रहा

मैं राजा बना पहन सिर पर यह कनक-किरीट-मुकुट हीरा
नवलखा हारवाली रानी तू!—मेरी प्यारी हमशीरा
हम राजा-रानी, आज हमारा नव-अभिषेक मनायेंगे—
ये नगर-निवासी, कुंज-विलासी खग-मृग कर मंगल क्रीड़ा

ले देख कि करती मधुप-मंडली मेरी सुयश-भटैती है
कर लेंगी विश्व-विजय ऐसी मंजरियों की कमनैती है
मेरे सिंहासनतले पाद-पूजन को मेरी प्रभुता के—
उमड़ी अभिलाषी मानव की रे आस-हुलास-मनौती है'

यों कह रसाल ने चूम लिया महुए को उसे रिझाने को
उस लाज-भरी के दिल निज छवि को नाज-अदा उकसाने को
पर कठिन अरे नारी-चरित्र दुर्बोध रहस्य विधाता का—
कैसे कोई जाने, हँसना भी होता उन्हें रुलाने को

'भैया रसाल !' – मुख से महुए के ये दो शब्द कढ़े ज्यों ही
टप-टप पृथ्वी पर गिरीं अश्रु - बूँदें दृग से उसके त्यों ही
'भैया ! हम सचमुच धन्य, मिली हमको ऐसी गरिमा-सुषमा
मैं सोचा करती हूँ, परन्तु क्या यह निधि लुट जाये यों ही

'प्रभुता का पालन ! आह मधुर कितनी यह शान-बान, भैया
यह छवि-सिंगार नवलखाहार जिनपर मोहा जहान, भैया
मैं सोचा करती हूँ, परन्तु कुछ अर्थ न इनका क्या जग में—
इस सुख की स्वर्ण - सरी तिरती क्या यों ही यह जीवन नैया

'मैं जान गई वह अर्थ बंधु ! उस दिन दुरंत दुपहरिया में
आँचर में थोड़ा-सा सत्तू थोड़ा जल लिये गगरिया में
आई जब बड़ी उ ग-भरी वह कृषक-छोकरी भोरी-सी
मैंने वह अर्थ लखा, भैया ! उसकी रीती टोकरिया में

'मैं दे दूँगी नवलखाहार, मैं दे दूँगी अपना सुहाग
मैं दे दूँगी इस तृषित विश्व को अपना अमृत का तड़ाग'
तब राशि-राशि मोती महुए के द्वार लगे लुटने निशिदिन
कितनी टोकरियाँ भरीं, हुईं कितनी छोकरियाँ बाग-बाग

यह देख सदाव्रत त्याग बहन का वह रसाल भी सकुचाया
'मैं भी कुछ दूँ जग को'—उर में उसके अनुराग उमड़ आया
'तुझसी बहिनी के योग्य बनूँ भाई कैसे बतला, महुआ
कल्याणी ! तेरा उर - प्रकाश मेरे अंतरतम में छाया'

'राजा रसाल ! भैया रसाल ! यह ताज तुम्हारा सोने का
यदि तुम चाहो तो बन सकता है जग के कोने-कोने का
नव अमृत-घट—अन्यथा एक आडम्बर-भर प्रभुता का यह
दो क्षण का छवि-आकर्षण—इससे जग का क्या कुछ होने का

'तुम ऐसा फलो कि जगती की तकदीर तुम्हीं में फूल जायँ
इस एक-एक मंजरी मध्य अनगिनत टिकोरे भूल जायँ
राजा रसाल यह नाम तुम्हारा तब सार्थक होगा जग में—
जब डूब तुम्हारे रससागर मानव त्रिकाल दुख भूल जायँ'

❀ ❀ ❀ ❀

तब राजेश्वर रसाल सोने का मुकुट छोड़ फलवान हुआ
घर-घर में गाँव-गाँव खेरे आशा का स्वर्ण-बिहान हुआ
वह धन्य बहन बड़भागिन जग में जिसके शुचि उपदेशों से—
रस में भूला, मद में भूला अल्हड़ भाई मतिमान हुआ
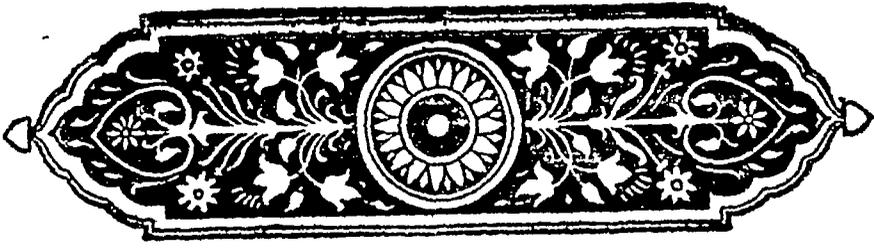
बहुत दिनों की बात पुरानी

आ जा मन्नू! तुझे सुनाऊँ, बड़ी रसीली एक कहानी
सदियों की यह बात पुरानी

परम पिता प्रभु करुणा माता—
जिन्हें जानते तुम प्यारे
उनके हुए तीन बच्चे
सुन्दर-सुन्दर न्यारे-न्यारे

माँ-बेटी

ज्येष्ठ पुत्र था स्वर्ग-सलोना
सौम्य शील-गुण-रूप-निधान
प्रभु ने अमृत पिला उसे
दे दिया अमरता का वरदान

सबसे छोटी बिटिया 'पृथिवी'
माँ की बड़ी दुलारी थी
उसकी अंचल-छाया में खिल
फूल-सरिस सुकुमारी थी

किन्तु बड़ी गर्वीली निकली
पृथिवी माँ को दुखदायी
जाने क्यों छिछोरपन उसमें
जिसे स्वर्ग-सा था भाई

माँ ने कहा एक दिन उससे—
'पृथिवी ! ओ बिटियारानी
क्यों विपरीत रीति तेरी
क्यों भूल गई तू कल्याणी

परमपिता की तू पुत्री
है भाई तेरा स्वर्ग विमल
हाय ! एक ही सर में तू क्यों—
जोंक बनी वह स्वर्ण-कमल'

सुनकर यह वाणी करुणा की
स्नेह-सनी गीली-गीली
रोष-भरी पृथिवी बोली
आँखे करके नीली-पीली

'माँ, जब प्रेम नहीं तो क्यों
भर्त्सना तुझे यह भाती है
तू भी तो बस उसी स्वर्ग की
कीर्ति पिता-सी गाती है

जो सबके सनेह के झूले
रैन-दिवस पल-पल झूले
स्वयं पिता जिसपर विमुग्ध
भँवरा-सा अनुकूले-भूले

तुही बोल माँ क्यों न बने वह
सबकी आँखों का तारा
क्यों न प्रीति - सरसी में तेरी
वह बन स्वर्ण-कमल फूले

जान गई यह दुरभिसन्धि—
मैं सब आँखो का खार बनी
माँ! यह तेरा ढोंग किन्तु
कहती—मैं प्यार-दुलार-सनी

किन्तु चली मैं अपना एक
नया संसार बसाने को
तेरे उस लाड़ले स्वर्ग का
गर्व-गुमान खसाने को

तुझसे दूर सुदूर मर्त्य—
नगरी मैं एक बसाऊँगी
निश्चय तुझे, स्वर्ग को, प्रभु को
अमृत को तरसाऊँगी'

यों प्रभु से, करुणा से और—
स्वर्ग से रूठ चली 'वसुधा'
माँ करुणा का बिलख-बिलख
रोना - समझाना हुआ मुधा

२

चली-चली पृथिवी आई
उदयास्त बना उसका मन्दिर
सात समुद्र विविध रंगों के
बने कूप-वापी सुन्दर

अपनी बस्ती नई गिरस्ती
उस मस्ती की बलिहारी
सजी-सँवारी बड़ी दुलारी
फूल - भरी क्यारी - क्यारी

पूर्ण रूपसी सुघड़ षोड़शी
फहराती , जब हरितांचल
मदिर दिगंचल मे वसन्त बन
लुट जाता सौरभ चंचल

कनक-किरण-वसना, रुनझुन
मंजीरों की झंकारों में
उसके प्राण फूट पड़ते
निर्झर की धार-फुहारो में

उसके नव प्रमोद वन की मालिन—
थी प्रकृति-परी दासी
माया के अधीन थी उसकी
कलाभरी मथुरा-काशी

'माया' और 'प्रकृति' दोनों
सखियों की जोड़ी भली मिली
उनके प्यार और सेवा में
पृथिवी-रानी पली-फली

एक दिवस उन्मत्त उर्वशी-सी
पृथिवी देती ताली
मुसकाती थी निरख-निरख
अपने उपवन की हरियाली

बोली माया से—'सखि
अब तो भरी अरी यह सुख-प्याली
देखें पिता, स्वर्ग में मुझमें—
कौन अधिक है छविशाली

किन्तु न जानें क्यों उदास-सो
मन लगता खाली-खाली
सच कहती हूँ इस जोवन से
तृप्ति नहीं होती आली'

ताड़ गई 'माया' पृथिवी के
हिय की जलन अभाव-व्यथा
कहने लगी 'प्रेम' की 'परिणय'—
की वह मोहक स्निग्ध कथा

'मुझे चाहिये प्रेम, किन्तु
प्रभुता की भी है चाह मुझे
लगो 'स्वर्ग' से होड़, चाहिये
सुख-सम्पदा अथाह मुझे

तू कहती है—प्रेम-पुरुष
निर्लिप्त शुद्ध निष्काम अनन्त
डर है कहीं न हो वह, निरा
दिहाती भोला-भाला सन्त

मुझे चाहिये सुघड़ स्वर्ग से
भी कोई ऐसा साजन
पूनो का चन्दा बन डोले
जो इस जीवन के आँगन'

माया तो चुप रही किन्तु
'कामना' 'वासना' दो सखियाँ
पृथिवो के मन-सुमन-कोष मे
डूब गईं बन मधुमखियाँ

प्यारे! तब पृथिवी ने मोहन-
रूप 'मोह' का वरण किया
जिसने आते ही उसका
सारा भोलापन हरण किया

किन्तु चतुर था 'मोह' खूब
गौरव-स्वप्नों में चूर सदा
विद्या, कला-कुशल, कृषि औ'
वाणिज्य निपुण भरपूर सदा

बनी परवशा अबला पृथिवी
उसने ऐसा मन्त्र पढ़ा
सौ-सौ यन्त्र-तन्त्र का प्रतिदिन
नया-नया षड़यन्त्र बढ़ा

'स्वार्थ' 'लोभ' उसके बच्चे दो
राहु-केतु-से उत्पाती
लील जायँ रवि-शशि भी ऐसे
गृध्र-वृत्ति के सम्पाती

हरे-भरे पृथिवी के अंचल
में लग गये खून के दाग
उजड़ गये जल गये हाय
सरसब्ज सलोने उसके बाग

अपने ध्वस्त-पस्त मन्दिर में
जिसमें सदियों से छाई
जरा-मरण की काली छाया
पाप-शाप की परिछाँई

पृथिवी व्याकुल तड़प रही थी
हड़प रहे अत्याचारी—
'स्वार्थ' 'लोभ' उसके बच्चे
निधि एक दूसरे की प्यारी—

उठा जिगर से उसके—
पश्चात्ताप-भरा असह्य परिताप
'हाय ! छोड़ वरदान पिता का
मैंने लिया घोर अभिशाप

क्षमा, क्षमा प्रभु ! मैं अपने
यौवन के मद में थी फूली
तेरी ही पुत्री माँ करुणे
तब तो थी भूली-भूली

क्षमा करो ओ स्वर्ग-बंधु
ओ सुधासिन्धु, मैं विषवाली
अमर-बिन्दु ओ धवल इन्दु
मैं तेरी बहन अमा काली'

सुनकर आर्तवचन विषण्ण
पृथिवी के ये अन्तस्तल के
आकुल हुआ स्वर्ग, व्याकुल—
करुणा, प्रभु की भींगीं पलकें

करुणा बोली—'नाथ ! न पृथिवी—
का दुख-दर्द सहा जाता
सच कहती अब उसे छोड़
क्षण-भर भी नहीं रहा जाता'

'जा करुणे, जा 'छवि' बिटिया
को भी अपने सँग में ले ले
उसे परस उसके जीवन की
चिन्ता, जरा, मरण हर ले'

गोरी-भोरी अमर - किशोरी
'छवि' करुणा - सँग मुसकाती
चाँद-परी सी तारों के पथ
चली—चली आती गाती—

'मैं चिर शैशव में पलती हूँ
इस विश्व-विटप की डाली में सुकुमार सुमन-सी खिलती हूँ
मैं चिर शैशव में पलती हूँ

है पड़ी युगों से पृथिवी के मन
जरा-मरण की परिछाँई
काली बदली चिन्ता-वियोग की
काल-निशा बनकर छाई

उसमें मधु की पूनो बन करुणा
प्यार-भरी हँसती आई
मैं उसके अंचल चिन्तामणि की दीप-शिखा-सी जलती हूँ
मैं चिर शैशव में पलती हूँ

मैं छू भर देती और मालती
जरा जीत कोरक लाती
मेरे इंगित से नित्य उषा
सिन्दूर-माँग निज दुहराती

मैं त्वरा-भरा शैशव इस वृद्धा
वसुन्धरा में बरसाती—
मैं निविड़ रात में प्रात अमा में राका रचती चलती हूँ
मैं चिर शैशव में पलती हूँ

यह वरुणा-सी करुणा आई
भर-भर कर सुधाकलश लाई
जो जमी युगों से स्वार्थ-लोभ
की पाप-छाप कीचड़ काई

सब धो-खो बनी सुस्नात गात
ओ पृथिवी नन्दन-अमराई
मैं शुचिता की दीवट में मंगल-दीपाली-सी बलती हूँ
मैं चिर शिशुता में पलती हूँ'

❀ ❀ ❀ ❀

सुनता है मुन्नू ! यों पृथिवी-पुत्री-गृह माँ करुणा आई
माँ-बेटी की यह मिलन-कथा तेरे ही हित कवि ने गाई
पर चाँद-परी-सी जो छवि तारों के पथ से गाती आई
वह तो तेरी पलकों की बदली में बिजली बनकर छाई

प्रथम परिचय

मैं हूँ निरा अकिंचन भोले ! तू लाड़ला ललन अलबेला
क्या दूँ तुझे, लाज लगती, इस प्रथम-प्रथम परिचय की वेला

एक हवस है यही कि बढ़कर
तुझको निज हिय-हार बना लूँ
राजेश्वर ! तेरी चन्दन-वाड़ी में
अपना हृदय जुड़ा लूँ

तुझे अश्रु से शिरा-शिरा के
प्रणय-पुलक-रस से नहलाऊँ
आज हिया की इस कुटिया में
तेरी छवि का दिया जलाऊँ

तुझे देख उमड़ा अजीब प्राणों में अरमानों का मेला
क्या दूँ तुझे, लाज लगती, इस प्रथम-प्रथम परिचय की वेला

कुछ नूतन दूँ तुझे, किन्तु
ऐसा कुछ देय कहाँ मैं पाऊँ
ओ नवीन ! तुझसे अगेय क्या
जो तेरे हित गेय बनाऊँ

तू साकार स्वप्न, स्वप्नों की कौन कथा मैं तुझे सुनाऊँ
चिरानन्द ! मैं निरानन्द क्यों सुना तुझे जग-व्यथा रुलाऊँ

मस्ती-भरी आज तेरे जीवन को
यह अमराई डोले
नव आशा कुड्मल-कुल में
नव प्रात-किरण-कुंकुम-मधु घोले

चाह हृदय की यही कि
तेरी कली-कली पर अलि-सा गाऊँ
फूल-फूल पर बुलबुल-सा
लुट जाऊँ बिक जाऊँ बलि जाऊँ

एक बूँद से जिस मिठास की
बनते मेरे गीत सलोने
इन नयनों में भोले तेरे
उस मरंद-केसर के दोने

कवि की दुआ निछावर तुझपर ; फूल फैलकर विश्व उजेला
और तुझे क्या दूँ प्यारे ! इस प्रथम-प्रथम परिचय की वेला

मेरा दुधमुँहा

कैसे अंकित करूँ तुम्हारी नवल-धवल यह छवि मनचाही
ओ मेरे दुधमुँहे! चाहिये तेरे लिये दूध की स्याही

फूल-सी छवि आँकने को फूल की जो कलम होती
इन्द्रधनु के लेख-पट पर वर्ण बनते मधुर मोती
हाय! तो न विमुग्ध मेरी कल्पना निरुपाय रोती
आज इस छवि की त्रिवेणी में निखिल जग-कलुष धोती

रूप के ओ मानसर के मृदुल मंजु मराल मेरे
दो हृदय के प्रणय-सिंचित आलबाल-प्रवाल मेरे
पा तुम्हे मेरे सदन में आज कंचन-मेह बरसे
पुलक-गद्गद गोद में नव दूध-पूत सनेह सरसे

इन्दु सुषमा-सिन्धु के, मेरे जगत् की विभव-राका
तू प्रिया की माँग के जगमग अमर सिन्दूर-खाका
शान तू, अभिमान तू मेरे सदन की इन्दिरा का
प्राण तू, वरदान तू इस विधुर वृद्ध वसुन्धरा का

और क्या मेरे लिये तू?—आह! यह कसे बताऊँ
प्राण तुझमें, प्राण में तू, क्यों न मैं—तू भूल जाऊँ
मैं चितेरा, चित्र तू स्वर्गिक!—अरे विधि-कार्य कैसा
तुच्छ मुझ मानव-पिता का पुत्र तू, आश्चर्य कैसा

ओ अमृत-सन्तान! ओ तस्वीर मेरी सहचरी की
ओ कनक-अरविन्द-कलिका मुग्ध मेरी मधुकरी की
आज निर्धन है कला, कविता भिखारिन, कवि अकिञ्चन
मर्त्य कैसे कर सके अमरावती का स्वस्ति-वन्दन

रुक जाती लेखनी, आज कवि काव्य-कला की हुई तबाही
कैसे अंकित करूँ तुम्हारी धवल नवल यह छवि मनचाही
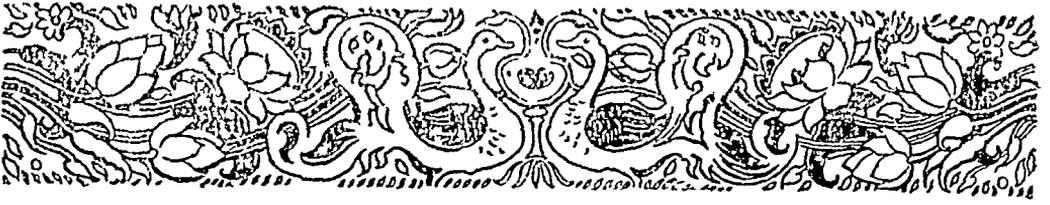
उसकी मुस्कान

देखे हैं मैंने फूल, किन्तु उनकी छवि में वह बान नहीं
चाहिये नाम कुछ और, अरे! यह हँसी नहीं, मुस्कान नहीं
चू-चू पड़ती जो अधर-पल्लवों से गुलाब-सी रस-भीनी
खिंचती, छिपती कंचन-विद्युत्-रेखा-सी जो झीनी-झीनी
क्या कहूँ इसे? थक गया खोज, मिलता इसका उपमान नहीं
चाहिये नाम कुछ और, अरे! यह हँसी नहीं, मुस्कान नहीं
यह हल्की सी लाली मुँह की, या इसे पुलक-जलजात कहूँ
यह किलक कि इसे अमिय की प्रिय रिमझिम-रिमझिम बरसात कहूँ

ओ हँसनेवाले! तुम्हीं कहो, तुम राज-हंस किस छवि-सर के
आये बिखेरने यों मोती प्राणों में राशि-राशि भर के
मेरे मधुवन के हरिचंदन! इस नन्हें-से संपुट-स्वर में
लाये कैसे तुम यह नन्दन, दो पत्रों के मधु मर्मर में

मेरा चुम्बन, मेरा दुलार-पुचकार, आज साकार बना
इस एक किलक में गूँज एक कविता मेरा संसार बना
मेरे सुहाग के दीप! तुम्हारा हास यहाँ मधुमास बना
मेरा सनेह तुममें खिल जग-मन्दिर का अमर प्रकाश बना

फिर हँस दो मेरे चन्द्र! हँसूँ मैं, मेरा पारावार हँसे
दुख भी हँस दे, इस हँसी-खुशी में एक नया संसार बसे
यह परम पिता की देन, मर्त्य में इसका कुछ प्रतिदान नहीं
चाहिये नाम कुछ और, अरे! यह हँसी नहीं, मुस्कान नहीं

उसका रोना

मेरा यह सुगना अलबेला

किस अभाव से सिसक मचलता यह नित प्रात-साँझ की वेला
मेरा यह सुगना अलबेला

यह अनजान किसी मधुवन के कुञ्जों से भूला-भटका सा
अभी-अभी पल्लव-पुंजों में कोरक ज्यों फूला टटका सा
आ उतरा मेरी सुहागिनी की कामना-पुकार-सहारे
परदेशी रम गया यहाँ मेरे सनेह-पिंजरे अँटका-सा

कैसी इसकी परस-पुलक कैसा इसका पुचकार दुलारा
छू जिससे मेरी प्रेयसि के उर बह चली दूध की धारा
यह कैसी मृदु किलक कि मन्दिर के प्रस्तर भी बोल उठे रे
यह कैसी छवि झलक कि आँगन में डोले चंदा उजियारा

बड़े जतन से जुगा सका हूँ अपने घर यह रतन-उजेला
मेरा यह सुगना अलबेला

किन्तु न जाना अपने इस परदेशी को किस भाँति रिझाऊँ
किस वन का अमृत-फल दूँ किस गैया का घी-दूध पिलाऊँ
मचला करता यह निशि-दिन जाने किसका यह जादू-टोना
यह पंछी क्यों ग्रहण न करता पृथ्वी का मधुपर्क सलोना

क्या जानें, किस नन्दन-वन का इसने मधुर-मधुर फल खाया
किन परियों ने इसे मेघ-पलने में गा लोरियाँ झुलाया
व्योम-विहारिणि किस बाला ने इसे दिया रे चंद्र खिलौना
किस वनदेवी ने तितली-सा इसे फूल की सेज सुलाया

किस अतीत की स्मृति की भाषा किस अभाव की कसक-कहानी
किस दुराव की सिसक-भरा चूता यह आँखों से है पानी
इस नव-परिचित आगन्तुक का अपना जग जो भूल गया है
शायद यह रोना उसका हो एक स्वप्न है—एक निशानी

नहीं भुला पाता उस जग को पृथ्वी का आकर्षण-मेला
इसीलिये रोता रहता है क्या मेरा सुगना अलबेला
मेरा यह सुगना अलबेला

उसका सपना

१
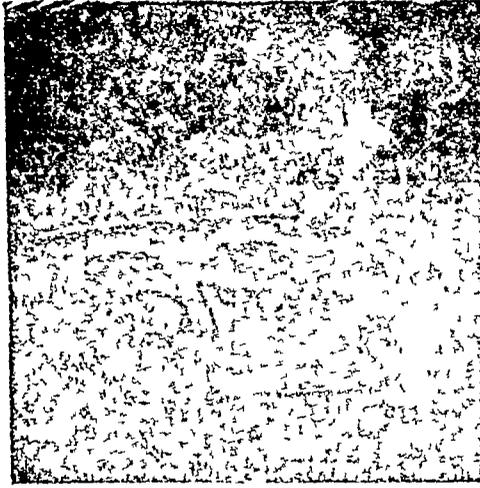
लगी है सुधि की रेशम-डोर

झूल रहा आँखों के पलने में मेरा चित-चोर
लगी है सुधि की रेशम-डोर

उसे भुलाने को बहुधधी
जीवन की चिन्ताएँ अंधी
घेर-घेर सुध-बुध खोये—
मेरे मन को कर लेतीं बंदी

जाने तभी मुक्ति-सी कब आती कैसे किस ओर

सिन्धु-सी उसकी स्वप्न-हिलोर
लगी है सुधि की रेशम-डोर

२

उस दिन डूब गया मन उसके सपने में वन-मधुमखियाँ
रँगी इंद्रधनु से सावन के श्याम गगन-सी ये अँखियाँ
निकल देह-पिंजरे से पंछी निज मधुवन की ओर चला
गंगा के उस पार देश जो रवि-सा सदा अँजोर भला—

पहुँच गया !— प्राणों की ममता प्राणों में ही सिसक रही
चूमूँ !— माँ-मौसियाँ यहीं हैं !—जीवन में यह कसक रही

धूल-भरा तन फूल-भरा मन परछाईं भी नरम-नरम
'बाबूजी' सुन हुआ चरम सुख, पर क्यों आई हाय ! शरम
रहा तीन दिन प्रतिदिन उसको तीन सहस्र बार देखा
पर क्यों लगता जैसे उसे न जी-भर तीन बार देखा

"बाबूजी, ले चलो मुझे भी !"—छलक गई भोली आँखें
बँधी निगोड़ी लाज-निगड़ में पर सनेह की थी पाँखें
हाँ, ना—यह भी कह न सका मैं चला आँख मींचे छलिया
छिन जिनका मधुचक्र गया ज्यों व्याकुल वे मधु की ललियाँ-

रोता छोड़ उसे, मेरी ममता ने जब घूँघट छोड़ी
हाय ! उसी क्षण निद्रा ने उस सपने की माया तोड़ी
जग, देखा पलकों में पुलक-परस न अभी मिट पाया था
इस पथ से, मैं समझ गया, मेरा वनमाली आया था

किन्तु कसक है यही कि मैं सपने में भी यह कह न सका
प्राण, चलो ना ! मैं अधन्य यह कह न सका सुख सह न सका

उसकी याद

लो उसे मूँद अपने में ओ पलकों की कुंज-सलौनी
उड़ जाय न कहीं बड़ी चचल उसकी सुधि की खग-छौनी
मीठी-सी याद जभी उसकी मन-मन्दिर में आ जाती
मैं तो क्या यह सारी वसुधा उसके रँग मे रँग जाती
दो दिन के गेहूँ के अकुर मैं टुकुर-टुकुर लखता हूँ
वह कोमलता उसकी सुषमा का मधुर मुकुर बन जाती
यह शरद-इदु कितना ऊपर ! मैं यहाँ खड़ा व्याकुल भू पर
क्यो उसे गोद भरने को सुधि बन सिधु उमड़ती जाती
क्यों उमड़ा आज विश्व में मेरे यह अपनापन का मेला
मैं कुज-कुंज में देख रहा अपना सुगना अलबेला
उस दिन देखी थी एक भिखारिन की गोदी की लाली
सहसा आँखों में चौंध गई कुछ पहचानी उजियाली
झनझना उठे सोये प्राणों के तार सोच फिर आया—
पा गई भिखारिन, यह कैसे मेरे अमृत की प्याली
उसके अचल की दीप-शिखा ने चू-छू हर ली क्षण में
मुझ विधुर प्रवासी के सूने मन-मन्दिर की अँधियाली
वह एक भिखारिन ! नहीं अरे वह कमला देवि दुआ की
जो जला गई मेरे अन्तस् मेरी बिछुड़ी दीपाली
उसकी सुधि उस मेरे जीवन के चिन्तामणि की माया—
उस मेरे दिनमणि के बहुरंगी इन्द्रधनुष की छाया—
मैं देखा करता हूँ सब में —यह मलिन भिखारिन भी तो
मुझसी ही धन्य कि इसने भी छवि का वनमाली पाया
लो उसे मूँद अपने में ओ पलकों की कुंज सलौनी
उड़ जाय न कहीं बड़ी चंचल उसकी सुधि की खग-छौनी

पीर यह कैसी निराली
प्राण की प्रति साँस में यह झूलती तसवीर आली
हिय तथापि अधीर आली
पीर यह कैसी निराली

मातृपद

अब अजान किशोर हिय ने प्रणय का प्रतिदान माँगा
रूप ने छवि ने जवानी ने अमर वरदान माँगा
प्राण की वह प्यास-अनुसूया त्रिपथगा खींच लाई
तृषित जीवन-चमन देखो ! आज मालिन सींच लाई
यह प्रतिध्वनि निखिल हिय की गूँज की चिर-वेदना की
पूर्त्ति प्रियदर्शन सजनि ! चिर साधना-आराधना की
तृप्ति-तर्पण आज इस तप का करे दृग-नीर आली
पीर यह कैसी निराली

वह दुपहरी रूप की थी—प्राण-धन की मानिनी मैं
दो हृदय की क्षुद्र सीमा में बँधी अनुरागिणी मैं
आज मंगल मातृपद पा भुवन में अभिमानिनी हूँ
विश्व-मन्दिर दीप आशा का लिये मधुयामिनी हूँ

यह हमारा स्वप्न-सुख जग के नयन की रजत-राका
परिधि-सीमित दम्पती का विश्व से सम्बन्ध-खाका

पल रही इस गोद में यह राष्ट्र की तकदीर आली
पीर यह कैसी निराली

उर-हिमालय से उमड़ करुणा बही जग-कलुष धोने
सुरसरी-सी आज जग में मोतियों के बीज बोने
रुदन हीरों की लड़ी सखि ! फुलझड़ी अब त्योरियाँ हैं
हास में मधुमास मेरी बोलियों में लोरियाँ हैं
धन्य रे मेरे भगीरथ ! धन्य परिवर्त्तन निराला
दृग-कलश परिपूर्ण अमृत मृत हलाहल और हाला

प्यार-ममता-दूध से भींगा सुखद यह चीर आली
पीर यह कैसी निराली

धन्य परिवर्त्तन ! धरा के आज कण-कण प्यार सरसे
धूल भी चंदन बनी मेरे ललन के पाणि-परसे
आज एक रहस्य तम-आलोक मे भीषण-सलोना
पूर्णिमा आशीष कल्याणी अमा में डीठ-टोना
यह मचलता सजनि अम्बरवासिनी करती निहोरा
उतर आता चाँद आँगन में लिये कचन-कटोरा

एक-एक विभूति जग की आज परिचित सहचरी-सी
फूल ऐसा कौन जिसमे मैं न फूली मधुकरी-सी
प्राण के रे लाड़ले ! पाकर तुझे विभु-भूति पाली
कौतुकी तेरे लिये जग की छिपी अनुभूति पाली

विश्व-विजयी आज मातृ-सुहाग का सिन्दूर आली
पीर यह कैसी निराली

चाहती अमरावती से पारिजात-प्रसून लाऊँ
निखिल नन्दनवन अदन के अमिय फल तुझको चखाऊँ
चन्द्र को कर चूर चन्दन-अंगराग मदिर बनाऊँ
तारकों के पाँवड़े प्यारे! तिहारे पथ बिछाऊँ

मेघ-बालों की तरी पर इन्द्रधनुषों के नगर में
सतत स्वर्गङ्गा निनादित ज्योति की छाया-डगर में
चाहती उड़ अप्सरा-सी गगन-पलने पर झुलाऊँ
वीर-सू मैं उर्वशी शाश्वत कुमारी को लजाऊँ

किन्तु लिपटी मनुजता-दौर्बल्य की जंजीर आली
पीर यह कैसी निराली

होड़ ले सकती कहाँ री प्रकृति! तेरी चित्रसारी
वह कला वह कल्पना की छवि कहाँ तूने उतारी
देख तो यह चित्र मेरा वर्द्धमान असीम चेतन
विश्व के क्षणभंगुरों में एक अक्षयवट पुरातन
सृष्टि-क्रम का स्रोत मैंने अचिर में चिर-चित्र आँका
रूप के इस दीप अविचल दामिनी-द्युति की शलाका

वे गुलाब नहीं सजनि! जिनमें खड़े काँटे अड़ीले
मसृण ये विद्रुम लिये पीयूष के दाने सुरीले
सृष्टि की तेरी मिटा दी ले कलंक-लकीर आली
पूर्ण मानव-चित्र आली

जीरादेई

[वह नमस्य गाँव जहाँ देशपूज्य राजेन्द्र बाबू का जन्म हुआ]

१

रुक जा पथिक, देख ली तूने
वर्द्धमान की वैशाली
और तथागत - पद - अंकित
वह कपिलवस्तु गौरवशाली

किन्तु अभी बाकी झाँकी है
एक अरे वह तीर्थ - रेणु
जिस आलबाल में पली
विश्व-वेदना-भरी वह अमर वेणु

तू आँख फाड़ क्या देख रहा रे,
यह तो निपट गाँव - गँवई
पर शीश झुका, यह है बिहार का
वृंदावन जीरादेई

२

यह वृंदावन—जिसके पलने
आर्यों की ऋषिवंशता पली
जिसकी अनंत सीमंत-ज्योति से
इस कलि की कंसता टली

थर्राया प्रभुता का सिंहासन
जिसके कटु हुंकारों से
भर आया ठूँठों में दल-फल
उसकी ही करुणा-फुहारों से

जो परंपरा से सदियो के पथ
देन आर्यकुल की आई
उसकी पालिका बनी इस युग
जीरादेई यशुमति माई

३

उर्वर विहार की भूमि युगों से
सत्य - अहिंसा की सींची
पर जब गुर्जर से सेनापति ने-
की विजयी पुकार ऊँची—

'ओ धर्मक्षेत्र के वीर! मिटा यह
युद्ध - नीति दानवता की
अरि को परास्त कर सके प्रीति से
शुद्ध नीति मानवता की'

सिहरी विहार की भूमि,
बचा ले लाज तथागत की कोई
'लो मेरा यह राजेन्द्र'—
गर्व से बोल उठी जीरादेई

४

जिसने स्वदेश के चरणों पर
अपना सुहाग-सुख भुला दिया

इस तप्त भूमि पर निज प्राणों को
अमृत-कलश-सा ढुला दिया

युग युग की दैन्य-अविद्या की
अँधियारी अमा मिटाने को—
जिसने निज रोम - रोम को
शीतल सौम्य सोम-सा जला दिया

जिसकी प्रबुद्ध वाणी ने हिन्दी-वेलि
हिन्द - भर में बोई
उस गंगा-से पवित्र नर की
गोमुखी तुम्हीं जीरादेई

५

दीपित दिनेन्द्र - सा भारतीय
नभ में राजेन्द्र हमारा है
वह कोटि-कोटि दीनों-प्रश्रयहीनों
का एक सहारा है

पर ओ तपस्विनी अरी गर्विणी !
यह सौभाग्य तुम्हारा है
बन गई तुम्हारी पुतली
जगभर की आँखों का तारा है

तुम त्रिभुवन - मंगलमयी उषा तुम जग में कनक प्रात लाई
तुम पूर्णकाम तुमको प्रणाम ओ धन्य - धन्य जीरादेई
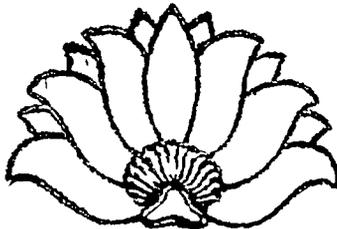
प्रवासी

कील - सी मन में गड़ी
कैसी निगोड़ी यह उदासी
हाय ! रह-रह बोल उठती—
'ओ प्रवासी ! ओ प्रवासी'

तू मुझे जीने न देगी
ओ छुरी - सी पीरवाली
आज तूने प्राण की
सारी शिराएँ चीर डालीं

जब कि दो क्षण विस्मरण की
नींद में मन भूल जाता
और इस नूतन जगत् में
फूल - सा खिल भूल जाता

एक ध्वनि उठती हृदय में
एक याद कचोट आती
फिर प्रतिध्वनियाँ हज़ारों
प्राण - मन को झनझनातीं

'हाय ! कितनी दूर आया छोड़ अपनी पुण्य काशी
रे प्रवासी, रे प्रवासी'

आज कितनी दूर आया छोड़
अपनी पुण्य - काशी
एक दुनिया ही जहाँ
तेरे लिये भूखी - पियासी
याद है कितने चकोरों का
मयंक ललाम था तू
और कितने मुग्ध मोरों का
सखा घनश्याम था तू

प्राण - प्राण कलश अमिय के
नयन - नयन सनेह बरसे
खेह तू, पर क्या न तेरे
सदन कंचन - मेह बरसे
छोड़ आया जो सुधा की धार
सौ - सौ वार पीकर
मिल सकेगा हाय ! उसका
इस डगर में एक शीकर
आज किस छलनामयी का बद्धपिंजर तू विलासी
रे प्रवासी, रे प्रवासी

तू मुझे जीने न देगी
ओ चिरंतन हूक वाली
प्राण के इस नीड़ में
तूने पिकी की कूक पाली
किन्तु मन रे मानसी, री
कौन जाने प्रीति - डोरी
ईश ने कितने अपरिचित
प्राणियों के संग जोड़ी

इसलिये बहती चले—बढ़ती चले
यह जिन्दगानी
कौन जाने हो छिपा
शाद्वल कहीं सरसब्ज धानी

या किन्हीं जन्मान्तरों के
पाप - पुण्य रहे अधूरे
जो कि होते हैं इसी कोने
सहज पूरे घनेरे

खींच लाये या तुम्हें ओ प्राण-पंछी
ये बसेरे
प्रकृति के सुनसान कोटर
ये मनोरम गाँव - खेरे—

हे अपरिचित गाँव - खेरे
हे सुपरिचित जन्म से हे भरत-खंड अखंड मेरे
हे सुपरिचित देश मेरे

मैं तुम्हें पहचानता ओ
देश की मिट्टी पुरानी
अंग - वंग कलिंग में
चाहे कहीं तू राजरानी
गंध से मृदु-स्पर्श से ये पुलक-गद्गद प्राण मेरे
हे सुपरिचित देश मेरे

प्यार में चाहे न हो
व्यवहार ही में जब सयानी
निकल पड़ती मानवों के
कंठ से यह राष्ट्रवाणी

फिर कहाँ परिचित-अपरिचित
और अपना या पराया
तार ही बस भिन्न
सबमें एक ही तो स्वर समाया

इसलिये वासी प्रवासी हिन्द के जन समुद टेरें
हे अखड स्वदेश मेरे
हे सुपरिचित देश मेरे

हे घन

हे घन ! हे जलधारा

हे छवि की छाया आकुल अन्तर की हे रस-धारा
उमड़ी आँखों की करुणा हे शीतल मुक्तागारा
हे घन ! हे जलधारा

बरसो, झुलस रहा मेरी पृथ्वी का अंचल सारा
बरसो, और बने मेरो पाषाणी टलमल पारा
हे घन ! हे जलधारा

बरसो, मेरे प्राणों की पुष्करिणी है यह रीती
स्वाती की सीपी समान यह बूँद तुम्हारी पीती
बरसो, तरस रहीं मेरी आँखें ये मीनाकारा
हे घन ! हे जलधारा

हे मेरे बचपन की ललक-पुलक के बिछुड़े संगी
देख आज भी सजल तुम्हारा नटवरवेश त्रिभगी
थिरक उठो मेरी ममता की राधा स्नेहाधारा
हे घन ! हे जलधारा

प्रियतम ! आज न जाने क्यों उन घड़ियों की सुधि आई
जब अजन-चंदन-सी शीतल थी यह कीचड़ काई
और न थे बस तुम पानी, थे मोती का फव्वारा
हे घन ! हे जलधारा

तुम आते, पर हाय ! न आता बचपन कभी दुबारा
हे घन ! यही सोच 'जीवन को मिलता एक सहारा
अभी शेष निश्शेष नहीं इस जग में छवि की रेखा
अभी शेष सावन भादो औ' चित्रा की शशि-लेखा
चिर नूतन का चतुर चितेरा अभी नहीं है हारा
हे घन ! हे जलधारा

बुलबुल के गीत

वसुधा के एक शान्त अंचल में
रम्य तलहटी मे रवि को
छवि के सपनों की शयन-शिला
साधना-कुटी रजनी-कवि की

है एक प्रान्त—पृथिवी का—
जहाँ स्वयंवर रग-स्थल सुन्दर
करता नखतों के किरण-वाण से
लक्ष्य-वेध धन्वी अम्बर

प्रतिदिन बनती नववधू धरा
प्रतिदिन पड़ती सिन्दूर-रेख
प्रतिदिन सिहासन पर उसके
होता नभ का राज्याभिषेक

हिम-विन्दु विश्व के प्रथम प्रात के
अभी न जहाँ सूख पाये
तृण मसृण सघन वन के
मन के मनोज-से जहाँ रूख छाये

प्रान्तर में उसी एक चुंबन-सी
उगी नवल चन्दन-बाड़ी
लहराती प्रकृति-परी की जहाँ
रँगीली गीली-सी साड़ी

हैं खड़े बड़े शीशम तमाल जो
शाल ताल छतनार सभी
उस मधुवन के वैभव-वसन्त के
प्रहरी पालनहार सभी

उसके अभिनन्दन की लड़ियाँ
वे वल्लरियाँ जो रहीं झूम
उसका हो यश-वन्दन चन्दन की
जो सुगन्ध जग रही घूम

उस मधुवन—उस मरकत मन्दिर की
ऋद्धि-सिद्धि की सफल कला
वह सपनों में खोई-सी ज्यों
दुष्यन्त - विरहिणी शकुन्तला

उस उर्मिल रूप सिन्धु की वासिनि
वह उर्वशी प्रवीणा - सी
वह पुलक-पंखिनी विश्व-रंगिनी
अमर-करों की वीणा-सी—

वह बुलबुल अरी पुजारिन वह
जो फूलों की दीवानी है
तुम भी सुन लो मैंने उसके
मुँह से यह सुनी कहानी है

उस मधुवन की थी एक कामना बाकी
तृण-तृण वीरुध-वीरुध में थी जो—
तुहिन-बिन्दु ने आँकी
थी एक कामना बाकी

थे ताल-शाल गर्वोन्नत मेघ-किरीटी
बल खाते गाते बाँस बजाते सीटी
पर सन्-सन् कहता पवन—
अरे तुम एकाकी एकाकी
थी एक कामना बाकी

अवनी-अंबर में छाई एक उदासी
वह बना दिगंबर-सा मधुवन वनवासी
शिव कैसे बने भूत-भावन वह
बिन पार्वती पिनाकी
थी एक कामना बाकी

मैं वही कामना सपनों के पंखों पर तिरनेवाली
मैं वही कल्पना इंद्रधनुष के पथ से फिरनेवाली
मैं वही साधना की मीरा मधुवन मेरा वनमाली
मैं वही जिसे कहते बुलबुल तुम आग-भरी मतवाली

मैं बनी पुजारिन तब से अपने साजन की
दो गीत प्रीति के—रीति यही मेरे साधन-आराधन की
मैं बनी पुजारिन तब से अपने साजन की

मैं फूलों के मंजीर पहनकर गाती
मैं शूलों के भी तीर सहनकर गाती

दो चीर कलेजा आर-पार फिर देखो
निकलेगी खूँ की बूँद-बूँद भी गाती
यह प्रभु की भीख कि बने चीख भी मेरी कड़ियाँ गायन की
मैं बनी पुजारिन तब से अपने साजन की

मुझको वसंत में सुख-सपना भाता है
पतझड़ दुरंत में तपना भी आता है
छू लू भी मलयज भी उर की वीणा को
लयवती बनाता सतत कँपा जाता है
फिर रहीं उँगलियाँ इन तारों पर किसी अलख मनभावन की
मैं बनी पुजारिन तब से अपने साजन की

पिया है मेरे सदय पिया
मैं जिस दिन गा न सकूँ उस दिन फट जाये मेरा हिया
पिया है मेरे सदय पिया

पृथिवी की पूजा-थाली में—
जब अर्घ्य-दीप से फूल जलें
तृण-तृण से अगरु-सुगन्ध चले
फुनगी-फुनगी आरती-शिखा-सी
हिले किरण की लाली में
पृथिवी की पूजा-थाली में
उस क्षण भी यदि न देवदासी-सी गुंजन-वंदन किया
कहो तब मैंने जी क्या लिया
पिया है मेरे सदय पिया

इस जगज्जाल से जो ऊबे
प्रभु - भक्ति - भावना में डूबे

वे भी न समझ पाये इसलिये कि उनने बस सत्कार किया
मैंने इस जग को प्यार किया

जो अपने ही मद में फूले
इस विश्व-सुन्दरी को भूले

वे क्या समझें किसके हित इसने नया-नया शृङ्गार किया
मैंने इस जग को प्यार किया

कुछ गृध्रवृत्ति के सम्पाती
आये जगती में उत्पाती

जल गये आप भी और हाय ! इस मधुवन को मिसमार किया
मैंने इस जग को प्यार किया

इसलिये सृष्टि मैं समझ सकी

छवि एक सनातन यहाँ उसी पर मैं जी-जान बिकी
सृष्टि मैं समझ सकी

वे रजनी-सिर बिंदी सुहाग-से प्यारे
झिलमिल झिलमिल हीरक के चाँद-सितारे

होते हैं विरल कभी छिपते
घन कुहा-कुरल बेचारे
पर मिटे-लुटे कब ये सारे-के-सारे

चिर वर्द्धमान जीवन-गंगा की गति किस नग से रुकी
सृष्टि मैं समझ सकी

जब तक नभ की शिशुता नित उषा सँजोती
यह सती सरीखी धरा पार्वती होती
रे कहता कौन विश्व-वन की छवि
जरा-भार है ढोती

टूटी वीणा को लिये भारती रोती

मानेगा कौन ?—न जब गुल की मुसकान न बुलबुल थकी
सृष्टि में समक्ष सकी

अग्रदूत

लड़ रहा वह कोहकन सुनसान मग के मंदरों से
चल रहा है एक पथिक नितांत बीहड़ बंजरों से

क्यों गृही वह आज गृह से ले चुका वन-वास-बाना
मत्त मृग-सा बन गया सुन कौन-सा नगमा तराना
बिक गया किस बोधि-सत्व प्रसाद पर भव-विभव सोना
प्यार राहुल का प्रणय-सौभाग्य गोपा का सलोना

ढूँढ़ता फिरता अहो किस प्राणधन को वह पुजारी
कौन-सी अपरूप छवि वह किस नगर की वह दुलारी—
सुधि जगी जिसकी; चला मुख मोड़ मस्जिद-मंदिरों से
चल रहा है एक पथिक अशांत बीहड़ बंजरों से

कनक पिंजर में बँधा स्वच्छंद मधुवन का सुआ वह
आज बंधन तोड़ फिर उन्मुक्त मारुत-सा हुआ वह
उठ रहा तूफान हिय में तड़पता उसका कलेजा
कह रहा कोई उसे—"सरदार, तुम बढ़ते चले जा

बद्ध कारा में युगों से मानवों की यह तबाही
आज तुमको गढ़ सकी ओ मुक्ति के अच्युत सिपाही
तुम चलो जिस पथ वही पद-चिह्न चरणों के तुम्हारे
चमकते इस गहन तिमिराकाश में बन ध्रुव सितारे

धूल शूल त्रिशूल और बबूल की यह मरु-थली है
अमिय तो पीछे अरे पहले हलाहल की डली है

तुम त्रिशूली शिव ! तुम्हारे नयन की यह रजत राका
सींचती वसुधा सुधा से खींचती सुख-स्वप्न खाका
तुम चलो बढ़ते कभी तो इस सफर का अंत होगा
आज या कल ओ तपी ! इस रेत सृष्टि-वसंत होगा"

कह रहा कोई उसे—'सरदार, तुम बढ़ते चले जा'
उठ रहा तूफान उर में तड़पता उसका कलेजा

पा चुका संदेश प्रिय का सुन चुका वह मुक्ति-गाना
लख चुका वह पथिक अपनी कठिन मंजिल का ठिकाना
हो न तुम व्यवधान ओ सुरसा नियति की मलिन छाया
वह न रुकता वह बढ़ेगा है उसे उस पार जाना

माँगता वह सेतु-पथ है आज अगम समुंदरों से
चल रहा है एक पथिक नितांत बीहड़ बंजरों से
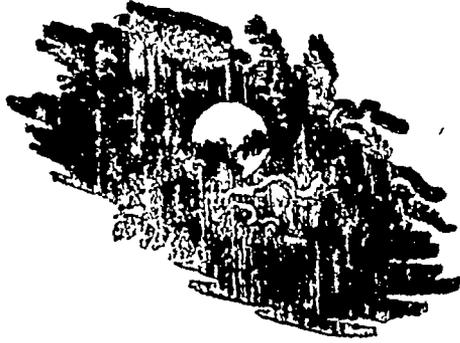
पावस की पूनो

स्नेहमयी जननी

पूनो ! तुम्हें न आज कहूँगा प्रिया या कि सजनी
आज तुम स्नेहमयी जननी

आज नहीं बखेरती मोती-माला विभावरी
और छलकती नहीं तुम्हारी हाला की गगरी

लुक-छिप रुक तिर रही तुम्हारी छवि की रजत-तरी
आज बंद है प्रेम-नगर की देवि ! डगर सिगरी

घिरी घटा दुर्दिन की कारा बनी हाय ! रजनी
सदन में अपने ही वंदिनी
देवि ! अयि स्नेहमयी जननी

प्रिया !—किसी दिन थी तुम वसुंधरा के कवि की प्रिया
अमरों की इंदिरा लिये अंचल में छवि का दिया

मुक्तकेशिनी सततहासिनी सुधा-सिंधु का हिया
कितने युग से,—दिवस जिसे म्रियमाण कर्म ने किया
जिया तुम्हारे प्राणों का जब बूँद-बूँद रस पिया
ओ जादूगरनी! जब तुमने वृद्ध विश्व को छुआ
संध्या का अँधियाला मिटकर हीरक प्याला हुआ
प्रेयसि! वे सुहाग के दिन जब गगनांगन आकुल-सी
फिरती तुम कलधौत लिये अपनी कलशी टल्मल्-सी
बिछ जाती उदयास्त तुम्हारी मुसकाहट फेनिल-सी
अवनी के स्वर्गारोहण हित एक रजत के पुल-सी
किंतु कहाँ वह स्वप्न! अरे तुम आज कौन रमणी
आज तुम स्नेहमयी जननी

माँ ओ स्नेहमयी माँ! लखकर हाय! तुम्हारी पीर
पाप-पंकिला भरत-भूमि का कवि है आज अधीर

तुम न छिपी—यह छिपी घटा में भारत की तकदीर
तुम न बँधी—यह बँधी हमारे प्राणों में जंजीर

क्षणभर तुम आशीष-सदृश झाँकती हमारी ओर
और जुड़ाती जब मानव के मानस-मुग्ध चकोर

घिर आता तबतक कोई बादल दुर्दांत कठोर
बुझ जाता आशा-प्रदीप मुँदता छवि का दृग-कोर
युगों से यह व्यापार कठोर
हाय रे कुटिल नियति बरजोर
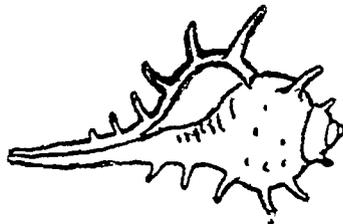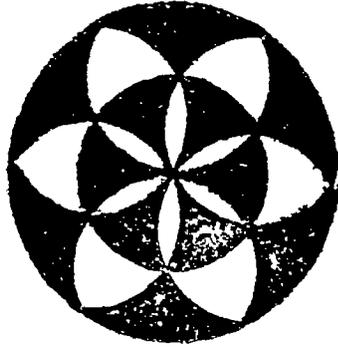
परिशिष्ट

[प्रत्येक कविता-पंक्ति की अक्षरानुक्रम सूची]

पंक्ति | पृष्ठ

"श्रीकलक्टर सिंह 'केसरी' की कविताओं में कल्पना की बारीकी, भाव की मिठास और भाषा की सुकुमारता देखने योग्य होती है। कोमल और मधुर शब्दों के चुनाव में आपकी प्रतिभा का चमत्कार भी देखने ही योग्य है। भाषा और भाव की मधुरिमा आपकी विशेषता है। बिहार के विख्यात कवियों में आपका एक विशिष्ट स्थान है। आप बड़े ललित कण्ठ से कविता-गान करते हैं। बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-कवि-सम्मेलन (पटना) के आप सभापति हो चुके हैं।"

['पटना-यूनिवर्सिटी साहित्यपाठ' से] —शिवपूजन सहाय

[प्रोफेसर, राजेन्द्रकालेज, छपरा]